

# जान रहा हूँ देख रहा हूँ

(सम्यक् मार्गदर्शक सशक्त कहानी संग्रह)

लेखक :

अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचन्द भारिल्ल  
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड  
प्राचार्य हू श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

□□□□□ : □□□□□□□□□□@□□□□□.□□□□

प्रथम संस्करण : ५ हजार  
(१ फरवरी २००८)

मूल्य : ८ रुपया

मुद्रक :  
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड  
बाईस गोदाम,  
जयपुर

## प्रकाशकीय

सिद्धान्तसूरि, शिक्षारत्न आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत सिद्धहस्त, लोकप्रिय लेखक एवं सफल साहित्यकार पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के द्वारा लिखे गये संस्कार, विदाई की बेला, इन भावों का फल क्या होगा, नींव का पत्थर आदि प्रसिद्ध उपन्यासों से तो पाठक भलीभाँति परिचित हैं ही, उनकी इस नवीन कहानी कृति को प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत कृति में रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखीं उन ग्यारह कहानियों का संकलन है, जो जैनपथप्रदर्शक के सम्पादकीयों में तो आपने संभवतः पढ़ी होगी, पर साथ पढ़ने का आनन्द ही कुछ और है।

सभी कहानियाँ अत्यधिक उपयोगी हैं; क्योंकि ये सदाचार प्रेरक, नैतिक आचरण की मार्गदर्शक तथा धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं से भरपूर हैं। विशेष जानकारी के लिए इसकी पृष्ठभूमि अवश्य पढ़ें।

मुझे विश्वास है कि पाठक इन्हें पढ़कर इतने प्रभावित होंगे कि प्रत्येक विशेष अवसर में इसे वितरित करने की एवं जन-जन तक पहुँचाने की भावना स्वयं भी रखेंगे एवं अपने मित्रों को भी प्रेरित करेंगे।

ग्रन्थ के चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन हेतु श्री विवेक जैन, बहरीन का महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है, एतदर्थ हम उनके भी आभारी हैं।

इस कृति को अल्प मूल्य में पाठकों तक पहुँचाने हेतु उदारमना सत्साहित्य प्रेमी, सुन्दर प्रकाशन के लिए अखिल बंसल तथा टाईप सैटिंग के लिए कैलाश चन्द्र शर्मा धन्यवाद के पात्र हैं।

ह्र. ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.

प्रकाशन मंत्री,

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

## क्या/कहाँ

प्रकाशकीय	
पृष्ठभूमि	५-१६
प्रस्तावना	१७-२०
आत्मकथ्य	२१-२२
१. जान रहा हूँ देख रहा हूँ	२३-२७
२. मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं	२८-३९
३. पूजन और प्रवचन	४०-४६
४. पहले मुनि या मुनीम	४७-५०
५. मान से मुक्ति	५१-६१
६. स्वर्ग बासहूँ नी कोना हीं	६२-६६
७. ऐसे क्या पाप किये	६७-७५
८. यदि स्वर्ग नहीं हुए तो	७६-८०
९. मोय सुन सुन आवे हाँसी	८१-८८
१०. परिणामों की विचित्रता	८९-९३
११. चाँटे का काम काँटे से	९४-९९
१२. देखिये इस नजर से	१००-१०९
ह्व कीमत कम करने वाले दातारों की सूची	११०
ह्व लेखक के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन	१११
ह्व जैनदर्शन के पारिभाषिक कठिन शब्दों के अर्थ	११२

## पृष्ठभूमि

ह्व डॉ. मनीषकुमार शास्त्री एम.ए. पीएचडी  
व्याख्याता ह्व के.के.पी.जी. कॉलेज खतौली, (उ.प्र.)

जैन साहित्य जगत में पण्डित रतनचंद भारिल्ल प्रथम पंक्ति के साहित्यकार हैं। साहित्य के क्षेत्र में आपके आगमन से जैन साहित्य जगत निश्चित ही गौरवान्वित हुआ है। विशेष रूप से कथा-साहित्य के क्षेत्र में तो पण्डितजी को मानो कोई ऋद्धि प्राप्त है। आपके उपन्यासों को समाज में जो सम्मान मिला है, वह जैन साहित्य जगत के वर्तमान युग की एक अविस्मरणीय घटना है। 'विदाई की बेला' जैसी अमरकृति के लिए जैन समाज पण्डितजी से कभी उक्रण नहीं हो सकेगा।

प्रत्येक साहित्यिक रचना रचनाकार के व्यक्तित्व की दस्तावेज होती है। रचनाकार का व्यक्तित्व उसकी रचना से परे नहीं होता। पण्डितजी के संपूर्ण साहित्य पर उनके निजी व्यक्तित्व की गहरी छाया है। उनका व्यक्तित्व परछाई की तरह एक-एक पंक्ति के साथ समान्तर रूप से चलता है। जीवन की विडम्बनाओं, परिस्थितियों की विचित्रताओं में विवेक द्वारा धैर्य एवं आध्यात्मिक शान्ति की महत् अभिव्यक्ति ही पण्डितजी के साहित्य का मूल स्वर है। आपके साहित्य की रचना जैनदर्शन की पृष्ठभूमि पर हुई है। जैनदर्शन की विचारधारा रत्नराशि की तरह सर्वत्र बिखरी हुई है। जैनदर्शन एवं निजी जीवन के अनुभवों का मणिकांचन योग पण्डित भारिल्लजी की रचनाओं में देखने को मिलता है।

कथा साहित्य में उपन्यास के अलावा कहानी के क्षेत्र में संभवतः यह लेखक का प्रथम प्रयास है। ये कहानियाँ प्रायः उनके प्रतिदिन के व्याख्यानों की कड़ियाँ हैं। जैनदर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों को भी अपनी सरल, रोचक एवं दृष्टान्त युक्त शैली के द्वारा श्रोताओं को सहजता से समझा देना पण्डितजी

के प्रवचन की विशेषता है।

प्रस्तुत कहानियाँ उद्देश्य प्रधान हैं। इन कहानियों का लक्ष्य जैनदर्शन की विचारधारा को दृष्टान्तों के माध्यम से सरल शैली में समझाना है। सभी कहानियाँ जैन तत्त्वज्ञान की पार्श्वभूमि में लिखी गई हैं। सामान्यतः जैन समाज को संबोधन करना ही पण्डितजी को अभीष्ट है।

जीवन में परिस्थितियों की प्रतिकूलता एवं उतार-चढ़ाव विद्वानों के जीवन का शृंगार रहा है। विडम्बनाएँ विद्वानों के लिए वरदान हैं। पण्डितजी ने निजी जीवन से प्राप्त अनुभव के तिनकों-तिनकों को जोड़ कहानियों की रचना की है।

‘मुझे तो इन बातों की खबर ही न थी’, ‘मान से मुक्ति की ओर’, ‘ऐसे क्या पाप किए’, ‘स्वर्ग वासहूँ नीको नाही’ सरीखी कहानियाँ इन्हीं अनुभवों का लेखा-जोखा है। इन कहानियों का लहजा प्रथमानुयोग जैसा है, जिसमें पुण्य-पाप की विचित्रता दिखाकर वैराग्य को श्रेयस्कर बताया जाता है। इन कहानियों का उद्देश्य कला का प्रदर्शन नहीं; अपितु जीवन जीने की कला सिखाना है।

प्रस्तुत कहानियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे कहानियाँ आती हैं, जिनमें अन्याय, अनीति एवं भोगवृत्ति को छोड़कर धर्ममार्ग में लगने की प्रेरणा है। ‘मुझे तो इन बातों की खबर ही न थी’, ‘मान से मुक्ति की ओर’, ‘स्वर्गवास हूँ नीकों नाही’, ‘ऐसे क्या पाप किये’ हूँ ये कहानियाँ प्रथम वर्ग में आती हैं।

दूसरे वर्ग में वे कहानियाँ हैं जो किसी विशेष बिन्दु को समझने के उद्देश्य से दृष्टान्तों के रूप में लिखी गई हैं। ‘पूजन और प्रवचन’, ‘पहले मुनि या मुनीम’, ‘मोह सुन-सुन आवे हाँसी’, ‘जान रहा हूँ देख रहा हूँ’, ‘यदि स्वर्ग नरक नहीं हुए तो’, ‘परिणामों की विचित्रता’ हूँ ये कहानियाँ द्वितीय वर्ग में आती हैं। इनमें दृष्टान्तों को ही कहानियों का रूप दे दिया गया है।

प्रथम वर्ग की कहानियों के केन्द्रीय पात्रों में मनुष्य की छटपटाहट

विद्यमान है। ‘मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं थी’ का विद्याधर पेशे से एक वकील है। सफल वकील होने के बावजूद उसकी बैचेनी के नमूने देखिए हूँ “मुझे वकालत के अलावा कुछ भी तो नहीं आता। वकालत में भी मैंने पाप भावों के सिवाय भला काम कुछ भी तो नहीं किया। फिर भी मुझे यह बड़प्पन का अहंकार क्यों? धर्म के क्षेत्र में भी मुझे कुछ नहीं आता, फिर भी बड़प्पन के चक्कर में कभी धर्म के दो शब्द भी तो नहीं सुने। .....मैंने जीवन का सारा महत्वपूर्ण सारभूत समय वकालत के ज्ञान में यूँ ही बर्बाद कर दिया है।”

‘मान से मुक्ति की ओर’ का ‘जिनुआ’ किस तरह ‘जिन्नूजी’ और ‘जिन्नजी’ से ‘सेठ जिनचंद’ बनता है हूँ यह नियति की विचित्रता ही तो है। नियति के इस कुचक्र में वह अपनी असलियत (औकात) भूल जाता है। बेटे के अपहरण और पुण्य की क्षीणता ने उसे पुनः उसी भूमि पर ला दिया। वह नहीं जानता था कि हूँ “रोड़ पर पैदल रास्ता नापने वालों को करोड़पति बनकर कार में दौड़ने में देर नहीं लगती, तो करोड़पति से पुनः रोड़ पर आने में भी देर नहीं लगती।”

‘स्वर्ग वासहूँ नीको नाही’ का सेठ मनमोहन भी नियति के इसी कुचक्र का शिकार है। सच्चाई और न्याय-नीति की परवाह किये बिना वह करोड़पति तो बन गया; किन्तु आयकर विभाग के प्रकोप, वार्शिंग मशीन से पत्नी की मौत और दुर्घटना में बेटे के अपाहिज होने से सेठ भी उसी स्थिति में आ गया जहाँ मान से मुक्ति की ओर वाला ‘जिन्नू’ था।

‘ऐसे क्या पाप किए’ में लक्ष्मीनंदन का ‘लक्ष्मीवंदन’ होना भी नियति का मजाक था। “अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से घबड़ाकर वह देवी-देवताओं और मंत्र-तंत्रवादियों तथा ज्योतिषियों के चक्कर काटने लगा था”, “कमाई का बहुभाग देवी-देवताओं, मंत्र-तंत्रवादियों की भेंट, पूजा-पत्री में चढ़ने लगा।” वह सोचता है हूँ “लोग कहते हैं पुण्य

करो, धर्म करो, सुख होगा। मैंने जीवन भर अपने कर्तव्य का पालन कर पुण्य ही तो किया, पाप बिल्कुल भी नहीं किया, फिर भी ..... यह सब चक्कर क्या है? “यद्यपि मैं देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए घी के दीपक की ज्योति जलाता हूँ, वर्ष में दो बार तीर्थ कर आता हूँ, फिर भी कुछ नहीं...। इससे मुझे ऐसा लगता है कि हूँ मैं कहीं भूल में तो हूँ, अन्यथा यह दुःख क्यों? पण्डितजी! हमने पूर्वजन्म में ऐसे क्या पाप किए जिनका यह फल हमें मिल रहा है।”

इस प्रकार लक्ष्मीनंदन भी उसी धरातल पर आ जाता है जहाँ सेठ जिनचंद, मनमोहन और विद्याधर थे। यहाँ शुरू होता है पात्रों का अंतर्द्वन्द और प्रारंभ होती है सत्य की खोज। सेठ जिनचंद, सेठ मनमोहन, वकील विद्याधर और लक्ष्मीनंदन ये कोई हाड़-मांस के देहधारी चेतन व्यक्ति नहीं, बल्कि व्यक्तियों की दूषित विचारधाराएँ हैं। हममें से कोई भी जिनचंद व मनमोहन हो सकता है। लक्ष्मीनंदन और वकील विद्याधर भी हमारे चारों ही ओर चलते-फिरते नजर आ जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उपर्युक्त पात्रों के चरित्र का अंश किसी-न-किसी रूप में देखा जा सकता है। ये पात्र हमारी अंतरंग मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

कहानीकार द्वारा उपर्युक्त चरित्रों का सृजन मात्र समस्या प्रस्तुत करके पाठक को अतृप्त छोड़ने के लिए भी नहीं हुआ, बल्कि कहानीकार ने समाधान का प्रयत्न भी किया है। यह समाधान ही कहानियों का मूल उद्देश्य है। पात्रों का हृदय परिवर्तन और उनकी आध्यात्मिक जीजिविषा ही इन कहानियों का प्राण है। सेठ जिनचंद आदि पात्रों के जीवन का पुर्नजागरण एवं आध्यात्मिक उत्थान कथाकार के इसी उद्देश्य को पूरा करते हैं। प्रतिकूलताओं और अनुकूलताओं में हर्ष-विषाद न करके आत्मतत्त्व की अनुभूति और उसकी अनुभूति की बुद्धि ही जीवन की धुरी होनी चाहिए।

सेठ जिनचंद का परिवर्तन देखिए हूँ “मैं संकल्प करता हूँ कि पुण्योदय

से प्राप्त धन विषय कषाय की पूर्ति और दुव्यसनो में बर्बाद नहीं करूँगा।”  
“यह सब पुण्य-पाप का विचित्र खेल १२ वर्ष की समयावधि में ही देखकर सेठ संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया। उसे ऐसा वैराग्य आया कि वह घर-परिवार से मुँह मोड़कर पुनः करोड़पति बनने का विकल्प छोड़कर पुण्य-पाप से पार आत्मा के उस अनंत वैभव को प्राप्त करने के लिए चल पड़ा, जिसका कभी अंत नहीं आता, जो कभी नष्ट नहीं होता।” आसक्ति से अनासक्ति की यह यात्रा ही इन कहानियों का मेरूदण्ड है।

द्वितीय वर्ग की कहानियाँ मूलरूप में दृष्टान्तों का कहानी इन कहानियों का प्रधान उद्देश्य कहानी के माध्यम से गंभीर बातों का सरलता से समझाना है।

इस द्वितीय वर्ग में ‘जान रहा हूँ देख रहा हूँ’ में चोर के दृष्टान्त द्वारा सहज ज्ञातृत्व को श्रेयस्कर बताया है। ‘पूजन और प्रवचन’ में दशलक्षण और मुनिसंघ के काल्पनिक दृश्य द्वारा पूजन और प्रवचन का तुलनात्मक अध्ययन सहज ही सुन्दर बन पड़ा है। ‘पहले मुनि या मुनीम’ में मुनीम के दृष्टान्त द्वारा मुनि बनने के पूर्व की भूमिका बताई है। “यहाँ अध्यात्म में मुनीम का अर्थ किसी लौकिक सेठ की रोकड़ बही लिखने और रुपये के लेन-देन का हिसाब-किताब करने की नौकरी करना नहीं है, अपितु अपने आत्मा के लक्ष्य से बने लक्षपति चिन्मय सेठ की सेवा में रहकर द्रव्य-गुण-पर्याय और जीवादि सात तत्त्वों के खातों का सही लेखा-जोखा रखने का है।”

आधुनिक युग में धर्म के प्रति उपेक्षा एवं स्वर्ग-नरक के प्रति अनास्था के स्वर लगातार तेज होते जा रहे हैं। ‘यदि स्वर्ग-नरक नहीं हुए तो’ हूँ में बूढ़ी अम्मा द्वारा नास्तिक व्यक्ति को दी गई नसीहत बहुत ही आकर्षक

एवं हृदयस्पर्शी है। वह व्यक्ति स्वर्ग-नरक को नहीं मानता। वह बुढ़िया की धार्मिक क्रियाओं का मजाक उड़ाता है। जवाब में बुढ़िया ने जो वचन कहे, उन्हें यहाँ प्रस्तुत किये बिना आगे बढ़ने का दिल नहीं करता। बुढ़िया कहती है ह्व “अरे! तेरी मान्यता अनुसार ही सही। मानो स्वर्ग-नरक न भी हुए तो भी मेरा क्या बिगड़ा? संयम से रही, शुद्ध खान-पान रखा, भले काम करने से चित्त में प्रसन्नता रही, निश्चिन्त और संतुष्ट रही।” “मैं तो किसी तरह घाटे में नहीं हूँ।” “परन्तु कदाचित् नरक-स्वर्ग हुए तो तेरा क्या होगा? अपनी सोच! तूने तो नरकों के अस्तित्व से इंकार कर निर्भयता से स्वच्छन्द होकर जो दुर्व्यसन सेवन किए उनसे वर्तमान जीवन को ही भरी जवानी में यहीं नरक बना लिया है।” “अब तू न घर का रहा न घाट का। कुत्ते के मौत मरने जैसी तेरी हालत हो गई है। क्या इसे ही मौज-मस्ती से जीना कहते हैं।”

इस वर्ग की अंतिम कहानी है ह्व ‘मोय सुन-सुन आये हाँसी’ यहाँ मछली के दृष्टान्त द्वारा एक सार्वभौमिक सत्य का उद्घाटन किया है। प्रत्येक प्राणी स्वयं भगवान है, सुख का सागर है किन्तु अज्ञानतावश वह उसे बाहर खोजता फिरता है।

मछली कहती है ह्व “यदि पानी में आकण्ठ निमग्न रहने पर मैंने स्वयं को प्यासा बताया और तुमसे बाहर से पानी जाने को कहा तो तुम्हें मुझ पर हाँसी आ गई। अरे! तुम भी तो सुख के सागर में आकण्ठ निमग्न हो, सुख गुण से लबालब भरे हो, फिर भी तुम उसे भूलकर सुख के लिए इधर-उधर भटक रहे हो, भोगों के भिखारी बन गये हो।” इस प्रकार ये कहानियाँ गंभीर आध्यात्मिक तत्त्वों को सरलता से समझने के लिए उपयोगी है।

‘साहित्य समाज का दर्पण है।’ इस उक्ति के अनुसार प्रस्तुत कहानियों में कहानीकार ने जैन समाज में व्याप्त सैद्धान्तिक व्यावहारिक भ्रान्तियों को बड़ी चतुराई से उकेरा है। जैन कुल में उत्पन्न होने मात्र से कोई जैन नहीं हो

सकता। तत्त्वज्ञानसहित अनासक्त भाव से जीवन जीने वाला ही सच्चा जैन है। अन्याय-अनीति, छल-कपट और भोगों में आसक्त व्यक्तियों की कथाकार ने अच्छी-खासी खबर ली है। ‘मान से मुक्ति की ओर’ में वर्तमान जैन सेठों की जीवन-शैली का कितना यथार्थ चित्रण बन पड़ा है?

सेठ जिनचंद कहता है ह्व “कल ही तो उसने पचास लाख का बंगला लिया है। तीस लाख की नई मरसडीज गाड़ी बुक कराई है। दस लाख के बहू के लिए हीरों के गहने बनवाये हैं, मेरी ५०वीं वर्षगाँठ को मनाने का लगभग ५ लाख का बजट है।”

जैन समाज के नैतिक मूल्यों में गिरावट के साथ-साथ आध्यात्मिक बिन्दुओं पर भी समाज में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। गहराई में उतरे बिना ही अनेक लोगों ने समाज में अध्यात्म के प्रति द्वेष का वातावरण निमित्त किया जा रहा है। पीड़ा तो तब होती है जब इस प्रकार की चेष्टाएँ ऐसे व्यक्तियों द्वारा होती हैं, जिनका कर्तव्य समाज को राह दिखाना है, गुमराह करना नहीं। इस दिशा में भी कथाकार का ध्यान गया है।

अध्यात्म में सहज-ज्ञातृत्व का उपदेश ही प्रधान है। वस्तुतः साधना का आधार एवं अंतिम सत्य भी यही सहज ज्ञातृत्व है; किन्तु इसको वास्तविक रूप में न समझने पर यह संदेह खड़ा हो जाता है कि “यदि हम सहज ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो हमारे सभी कार्य कौन करेगा? पुरुषार्थ का लोप ही हो जायेगा आदि....।’ इसे पंचम काल का प्रभाव ही कहना चाहिए कि इन भ्रान्तियों को फैलाने का प्रयत्न धर्म के ठेकेदार त्यागी-तपस्वियों द्वारा हो रहा है।”

जो भी हो, कथाकार निराश नहीं हुए। ‘जान रहा हूँ देख रहा हूँ’ इसी भ्रान्ति का समाधान प्रस्तुत करने वाली कहानी है। “वस्तुतः एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता-भोक्ता नहीं है; क्योंकि दो द्रव्यों के बीच बज्र की दीवाल है।” “आत्मा का धर्म तो सचमुच मात्र जानना-देखना है।”

गृहवास के राग की आग का त्याग कर निवृत्त जीवन जीना एक महान उपलब्धि है। प्रत्येक गृहस्थ ऐसे जीवन की मधुर कल्पना संजोता है; क्योंकि मुनि बनने की भावना के फलीभूत होने का नाम मुनिदशा है; किन्तु वर्तमान में मुनिधर्म के मूल्यों में लगातार गिरावट का वातावरण है। मुनि बनने की पूर्व-भूमिका इसका वास्तविक स्वरूप और इस पद की गरिमा को समझे बिना ही मुनि दीक्षा ग्रहण करने की प्रवृत्ति समाज एवं धर्म के लिए एक ज्वलंत समस्या है। 'पहले मुनि या मुनीम' ह इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत करने वाली कहानी है। कथाकार का उद्देश्य लोगों को मुनि बनने से रोकना नहीं, बल्कि सच्ची समझ पूर्वक मुनि बनने की प्रेरणा देना है। "मोक्षमार्ग में मुनि बनने से पहले सच्चे-देव-शास्त्र-गुण की तथा अपने-पराये की यथार्थ पहिचान हो, स्व-पर भेद विज्ञान हो, सातों तत्त्वों में हेय-उपादेय-ज्ञेय का विवेक हो, वस्तुस्वातंत्र्य एवं सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की रुचि हो। मुनिधर्म अंगीकार करने के पहले ऐसा हिसाब-किताब रखने वाला मोक्षमार्ग का मुनीम होता है। ऐसा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की शरण में रहने वाला मुनीम आत्म साधना का व्यापार करते-करते एक दिन स्वयं मुनि बन जाता है।"

वर्तमान युग में भक्ति बढ़ी है, किन्तु विवेक घटा है। धार्मिकता में वृद्धि हुई है, किन्तु धर्म की समझ का हास हुआ है। यही कारण है कि व्यक्ति पूजा-अर्चना तो करता है, किन्तु पूजन का उद्देश्य, स्वरूप, फल आदि के विषय में वह कुछ नहीं जानता। 'मैं कौन हूँ?' भगवान कौन हैं? मैं भगवान कैसे बन सकता हूँ? ह इन प्रश्नों के समाधान के लिए मानों फुरसत ही नहीं है। लोग घंटों पूजन करते हैं किन्तु उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान जहाँ होता है, ऐसी शास्त्रसभा से तो मानो परहेज हो। ऐसी अरुचि रखते हैं। समाज की इसी विसंगति को प्रस्तुत करने वाली कहानी है ह 'पूजन और प्रवचन'।

इसमें कथाकार ने पूजन और प्रवचन में तुलना करते हुए प्रवचन का महत्व बताया है। प्रवचन के महत्व को जितनी सहजता से पण्डितजी ने समझा दिया वह अद्भूत है। "अरे भाई! पूजन में हम भगवान से कुछ कहते हैं और प्रवचन में जिनवाणी के माध्यम से भगवान हम से कुछ कहते हैं।" "अरे वे तो सर्वज्ञ हैं, तुम जो भी कहना चाहते हो, वे उसे पहले से ही जानते हैं।" अपनी कहो कम और उनकी सुनो अधिक।"

जैन समाज की इन समसामयिक समस्याओं को यदि हम दायरे से बाहर निकलकर विस्तृत फलक पर देखें तो हम पायेंगे कि जैन समाज में ही नहीं, अपितु जैनेतर समाजों में भी ये समस्यायें उपस्थित हैं।

पण्डितजी का हृदय केवल जैन समाज के लिए नहीं धड़कता बल्कि संपूर्ण मानवजाति पर २४ घंटे मंडराने वाले संकट की आहट भी वे सुन रहे हैं। "किस आतंकवादी के मस्तिष्क में कब पागलपन का दौरा आ जाये या कब यह सनकी मानव एक जाम अधिक पीकर सनक जाये और एक ही पल में पूरा प्रगतिशील विश्व बर्बाद हो जाय, यह किसी को पता नहीं। स्वार्थ और मिथ्या अभिमान से भरे मानवों के आपसी टकराव के कारण आतंकवाद के भूत का भय सिर पर सवार रहता है। मानो यमराज ही मुँह बाये खड़ा हो।"

ऐसी स्थिति में मानव के कल्याण के लिए कथाकार का एक ही संदेश है ह आत्म जागृति एवं अनासक्ति।

इस प्रकार वर्तमान की विसंगतियों और विकृतियों के समावेश से प्रस्तुत कहानियों में संवेदना का सहज ही विस्तार हो गया है।

प्रस्तुत सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद है। जैनदर्शन के प्रमुख बिन्दुओं को प्रस्तुत करना इनका प्रमुख लक्ष्य है। इन कहानियों के इसी सोद्देश्यता के कारण इनकी साहित्यिक समीक्षा के लिए विशेष अवकाश नहीं है। उद्देश्य के अलावा इन कहानियों में सभी तत्त्व गौण हैं। आधुनिक युग में कहानी

साहित्य के जो मापदण्ड हैं। उन्हें समालोचक भी नकार चुके हैं। इन कहानियों के मापदण्ड पर रखना जरूरी भी नहीं है; क्योंकि इन कहानियों का मूल उद्देश्य मात्र सन्मार्गदर्शन है। पर इन कहानियों की समता हम पंचतंत्र व हितोपदेश की उन कहानियों से तो कर ही सकते हैं, जिनका उद्देश्य है मात्र हित की शिक्षा देना। यद्यपि आधुनिक कथा तत्त्वों की कसौटी पर इन कहानियों को कसने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी बहुत कुछ निर्वाह हुआ है, जो इस प्रकार है।

आधुनिक समीक्षा में कहानी का मूल्यांकन छः तत्त्वों के आधार पर किया जाता रहा है। ये छः तत्त्व हैं ह कथावस्तु (कथानक) पात्र, संवाद, देशकाल, भाषा-शैली एवं उद्देश्य। इनके अलावा 'शीर्षक' को भी कुछ विद्वान शामिल करते हैं, जिससे इनकी संख्या सात हो जाती है।

१. शीर्षक ह के निर्धारण में प्रस्तुत कृति में कथाकार को काफी सफलता मिली है। सभी शीर्षक कहानियों की मूल संवेदना का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। 'मोय सुन-सुन आवै हाँसी' एवं 'स्वर्गवास हूँ निको नहीं' में आँचलिक भाषा के पुट से सहज ही ये शीर्षक प्रभावशाली बन गए हैं। शीर्षकों के निर्धारण में कहानीकार की दृष्टि कथ्य से विचलित नहीं हुई।

२. कथावस्तु ह कथावस्तु कहानी का आधार होती है। इस तत्त्व का जन्म कहानीकार की उन लक्ष्यात्मक प्रवृत्तियों से होता है, जिसके धरातल और मूल प्रेरणा से वह अपनी कहानी का निर्माण करता है। प्रस्तुत कहानियों का कथ्य तो स्पष्ट ही है, और कथावस्तु भी अपने प्रयोजन को पूरा करने में सफल है। कुछ कहानियों में दूसरी कहानी का समावेश कहानीकार का अपना साहस है; क्योंकि कहानी कला में यह अपवाद है।

विस्तृत उपदेश की प्रवृत्ति धार्मिक शिक्षाप्रद कहानियों में ही सम्मान पा सकती है। वस्तुतः इन कहानियों का धार्मिक एवं शिक्षाप्रद होने से कहानीकार की उपदेश प्रधान प्रवृत्ति भी अस्वाभाविक नहीं है। यहाँ कथाकार का उद्देश्य भी कहानी कला नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला समझाना है।

३. पात्र ह प्रस्तुत कहानियों में पात्रों की योजना रोचक है। पात्रों का चयन बहुत ही सोच-समझकर किया गया है। सभी पात्र यथार्थ हैं और वर्तमान परिवेश से ही गृहीत हैं। साधु-संतों का समावेश भी उद्देश्य विशेष की पूर्ति करता है। पात्र प्रायः वर्गगत हैं। वकील विद्याधर, सेठ मनमोहन, सेठ जिनचंद, बूढ़ी अम्मा, लक्ष्मीनंदन जैसे व्यक्तियों का चरित्र स्वयं तक सीमित नहीं है, बल्कि ये सभी अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी पात्र यथार्थ एवं जीवंत हैं।

४. कथोपकथन (संवाद) ह यह कहानी का एक प्रमुख तत्त्व है। इससे कहानी में सजीवता, आकर्षण एवं गतिशीलता आती है। प्रस्तुत कहानियों में 'मान से मुक्ति की ओर' एवं 'यदि स्वर्ग-नरक नहीं हुए तो' ह इन दो कहानियों में संवादों का प्रयोग काफी आकर्षक है। संवाद प्रसंग एवं पात्रों के अनुकूल हैं। विद्याधर बुद्धिसेन एवं बूढ़ी अम्मा-प्रौढ़ व्यक्ति के संवाद स्वाभाविक एवं सजीव है। बूढ़ी अम्मा प्रौढ़ का चुटकीला एवं गंभीर संवाद इस संग्रह के श्रेष्ठ संवाद हैं। इनके अलावा जो भी संवाद हैं वे भी स्वाभाविक एवं कथा-विकास में सहयोग देने वाले हैं।

५. देशकाल ह कहानी में वातावरण या देशकाल दो प्रकार से देखा जाता है ह मानसिक ढंग से और भौतिक ढंग से। वकील विद्याधर, जिनचंद, सेठ मनमोहन, लक्ष्मीनंदन, सुखानंद आदि पात्रों का अर्न्तद्वन्द, हर्ष-विषाद, राग-विराग प्रथम प्रकार के उदाहरण हैं एवं दशलक्षण-अष्टान्हिका पर्व, जयपुर नगर की सुन्दरता, प्राकृतिक दृश्यों एवं सामाजिक चित्रण द्वितीय प्रकार के उदाहरण हैं। सामाजिक विसंगतियों के समावेश से इन कहानियों की सामयिकता तो सहजसिद्ध है ही।

६. भाषा-शैली ह प्रस्तुत कहानियों की भाषा सीधी-सरल खड़ी बोली है। भाषा को अनावश्यक रूप से दुरूह व साहित्यिक बनाने का बचा गया है। उपदेश व शिक्षा के लिए जैसी सरल व सपाट भाषा होनी चाहिए उसी भाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत के तद्भव एवं तत्सम शब्दों की



प्रचुरता होने पर भी भाषा कहीं भी कठिन नहीं हो पाई है। इस प्रकार भाषा कहानियों के स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल है। जैनदर्शन के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से आम पठकों को अवश्य परेशानी हो सकती है। पर्याय, परिणमन, द्रव्य-गुण-पर्याय, संवर-निर्जरा, त्रिकाली स्वभाव, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, अनपपवर्त्य, गृहीत-अगृहीत मिथ्यात्व, सम्यग्दर्शन आदि जैनदर्शन के शास्त्रीय शब्द हैं। यद्यपि साहित्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग दोष माना जाता है, तथापि इन शब्दों के बिना कथाकार का उद्देश्य पूर्ण होता दिखाई नहीं दिया, इसलिए जरूरत के अनुसार उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

‘स्वर्ग वासहूँ नीकौ नाही’ ह्व विशुद्ध रूप में विवरणात्मक शैली की कहानी है, जबकि ‘ऐसे क्या पाप किए’ आत्मकथ्य की शैली में लिखी गई है। लोकोक्तियों, गीतों, श्लोकों एवं सूक्तियों का भी कथाकार ने अच्छा उपयोग किया है।

७. उद्देश्य ह्व संसार की कोई भी वस्तु निरर्थक व निरुद्देश्य नहीं है। उसका होना ही उसकी उपयोगिता सिद्ध करता है। सामान्यतः कहानी को मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन माना जाता है, किन्तु कहानी जैसी साहित्य की उत्कृष्ट विधा का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानना उसकी गरिमा को नष्ट करना है। प्रस्तुत कहानियों का उद्देश्य भी मनोरंजन करना नहीं, अपितु सार्वभौमिक शाश्वत आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करना है। राग से वैराग्य, आसक्ति से अनासक्ति, परोन्मुखता से स्वोन्मुखता की ओर ले जाना एवं जैन तत्त्वज्ञान को रेखांकित करना कहानीकार का प्रमुख उद्देश्य है। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। सभी कहानियाँ उद्देश्य प्रधान ही हैं एवं पाठक पर अनेक रूपों में अपना प्रभाव छोड़ती हैं।

इस प्रकार पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल की प्रस्तुत कथा-संग्रह रूप रश्मियों से समाज को एक नई दिशा मिले एवं लेखक आगे भी साहित्य सृजन द्वारा समाज को संबोधित करते रहें ह्व इसी हार्दिक भावना के साथ इस समीक्षात्मक भूमिका को विराम देता हूँ। ●

## प्रस्तावना

ह्व पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

आज के इस (टेलीविजन) के युग में, जब चौबीसों घंटे मनोरंजन करने के टी.वी. चैनल चलते हों, ऐसी स्थिति में गंभीर तात्विक बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ना तो दूर ही रहा; सर्व साधारण व्यक्तियों का तो सरल साहित्य पढ़ने का भी मन नहीं होता है।

अधिकांश अदूरदर्शी तो दूरदर्शन के कार्यक्रमों को देखने में ही अटके रहने से सन्मार्ग से भटके ही रहते हैं। ऐसा करके वे अपने मानव जीवन का अमूल्य बहुभाग समय तो व्यर्थ बर्बाद करते ही हैं, अधिक समय तक लगातार देखने से वे अपनी आँखें भी खराब कर लेते हैं तथा मार-काट और अश्लील दृश्यों को देखने के कारण विषयानन्दी रौद्रध्यान होने से पाप परिणाम होते हैं सो अलग।

यद्यपि यह भी सब जानते ही हैं कि टी.वी. देखने में आधे से अधिक समय तो विज्ञापनों में ही निकल जाता है, जिनमें किसी भी दर्शक की रुचि नहीं होती। सीरियलों और सिनेमाओं में भी राग-द्वेषवर्द्धक परस्पर प्रेम एवं मारपीट के दृश्य ही अधिक होते हैं, फिर भी इस ओर लोगों का रुझान है। वस्तुतः उन्हें यह ज्ञात नहीं कि यह मारपीट में आनन्द मानने रूप रौद्रध्यान साक्षात् नरक का कारण है।

टी.वी. के कारण निःसंदेह सत्साहित्य के पठन-पाठन में भी कमी आई है। अब तक लोग सफर में साहित्य ले जाते थे, परन्तु अब बसों में, रेलवे स्टेशनों में, प्लेनों में भी चलचित्र दिखाये जाने के कारण व्यक्ति खाली ही नहीं रहता। सत्साहित्य पढ़े तो पढ़े कब?

इन परिस्थितियों में धार्मिक ग्रन्थ एवं नैतिक व सदाचार प्रेरक सत्साहित्य पढ़ना तो असंभव सा ही हो गया है।

कामकाज से फुरसत हुई नहीं कि बहुएँ-बेटियाँ, बच्चे-बूढ़े हूँ सभी को सबसे सुविधाजनक सुलभ मनोरंजन का साधन एक टी.वी. ही नजर आता है। अस्तुः।

बबूल के वृक्ष में लोगों को काटें ही काटें दिखते हैं, इस कारण बबूल व्यक्तियों को बुरा लगता है; परन्तु उसमें भी कुछ औषधीय गुण होते हैं। नित्य प्रातः ग्रामीण लोग अभी भी बबूल की दातुन तो करते ही हैं।

इसी तरह टी.वी. जब घरों में प्रवेश कर ही गया है तो अब उसमें दोषदर्शन के बजाय उसका किस रूप में सदुपयोग हो सकता है, यह देखने का प्रयत्न करना चाहिए और स्वयं को ही इस तरह संयमित या मर्यादित रहना होगा, ताकि उससे होने वाली हानियों से बचा जा सके और उससे जो लाभ उठाया जा सकता है, उस लाभ से लाभान्वित हो सकें।

दुनियाँ में तो पाँचों इन्द्रियों के विषयों की भरमार है, हम किस-किस को कोसेंगे। किसे-किसे इस भौतिक भोग प्रधान दुनियाँ से दूर रख सकेंगे?

जब चक्रवर्ती के पास छह खण्ड का वैभव और भरपूर भोग सामग्री होते हुए वह घर में वैरागी रह सकता है तो हम क्यों नहीं? अतः संयोगों को बुरा-भला कहने से कोई लाभ नहीं है। संयोग भले-बुरे होते भी नहीं हैं, उनमें इष्ट-अनिष्ट कल्पना करना, संयोगीभाव होना बुरा है, दुःखदायक है, अतः संयोगीभाव न हों हूँ यह प्रयत्न रहना चाहिए।

इस टी.वी. के आकर्षण को कम करने के लिए एक उपाय यह भी हो सकता है कि आधुनिक पद्धति से ऐसी सरल, सुबोध, संक्षिप्त एवं मनोरंजक तथा तत्त्वज्ञानवर्द्धक आधुनिक कहानियाँ लिखीं जायें, जो पाठकों को सहजता से समझ में आ सकें और कम समय में पढ़ी जा सकें।

प्रस्तुत कहानियाँ इसी दिशा में एक लघु प्रयास है। प्रस्तुत कृति में मेरे स्वयं के द्वारा समय-समय पर लिखी गई ऐसी ग्यारह कहानियाँ हैं जो आपको मनोरंजन के साथ नैतिकता और धार्मिकता की वृद्धि में सहायक होंगी।

ह

ह

ह

इस टी.वी. के युग में बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ना भले ही कम हो गया हो; परन्तु लघु कलेवर और प्रभाव की तीव्रता के कारण आधुनिक कहानी आज भी साहित्य की समस्त विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बनी हुई है; क्योंकि कहानी को एक ही बैठक में पढ़ा जा सकता है और उसी समय पाठक कहानी के शिक्षाप्रद कथ्य से प्रभावित और लाभान्वित होने से आनन्द का अनुभव भी करता है। कहानी में निष्कर्ष पाने के लम्बी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

वैसे तो कहानियों की परम्परा प्राचीन है, किन्तु प्राचीनकाल में कहानियाँ केवल कहने-सुनने तक ही सीमित थी; परन्तु इस आधुनिक युग में इस कहानी कला ने प्रौढ़ता की ओर कदम बढ़ाये हैं। आज की कहानी में जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को उद्घाटित करना कहानीकार का उद्देश्य रहता है।

प्राचीन कहानियों में नैतिक और धार्मिक उपदेश के साथ मनोरंजक तत्त्व भी जुड़ा रहता था, जबकि आधुनिक कहानी का उद्देश्य जीवन और उसमें होने वाले संघर्षों का चित्रण करना हो गया है। आधुनिक कहानी यथार्थ के धरातल पर मानवीय कमजोरी को उजागर करती हुई अनुकरणीय आदर्शों का मार्गदर्शन करती है। इसतरह कहानी मात्र मनोरंजन का साधन न रहकर सन्मार्गदर्शक भी होती है।

प्रस्तुत कहानियों के संदर्भ में अधिक कुछ न कह कर मात्र इतना कहना चाहता हूँ कि हूँ सभी प्रस्तुत कहानियाँ मौलिक हैं और पात्रों के नाम काल्पनिक हैं; परन्तु कहानियों के माध्यम से प्रतिपादित सिद्धान्त आगम सम्मत और युक्ति संगत हैं।

प्रत्येक कहानी पाठकों को कुछ न कुछ ऐसा संदेश देती प्रतीत होगी, जो उन्हें नवीन लगेगा और तदनुसार अपने जीवन को ढालने में पाठक प्रयत्नशील होगा।

मैंने केवल कहानी विधा की लोकप्रियता को मद्देनजर रखते हुए इस विधा के माध्यम से अध्यात्म की विषय वस्तु पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है; इसकारण मुझे आधुनिक कहानी के तत्त्वों के निर्वाह को जानकर गौण करना पड़ा है, अन्यथा अपनी बात कहना संभव नहीं था। इस कारण कहीं कथोपकथन (संवाद) गौण होकर प्रवचन शैली की प्रमुखता हो गई तो कहीं कथावस्तु शिथिल हो गई।

इसके बावजूद मुझे इस बात से संतोष है कि मैं अपने उद्देश्य में कहीं भी विचलित नहीं हुआ।

मैं मूलतः कहानीकार हूँ भी नहीं और मुझे कहानीकार कहलाने की तमन्ना भी नहीं है। मैं इतना जानता हूँ कि मेरा कथ्य पाठकों तक इस माध्यम से सरलता से पहुँच सके। इस कारण मैंने इस विधा में लिखने का प्रयास किया है।

कहानियाँ कैसी लगीं और कितनी क्या प्रेरणा मिली? इसका निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

यदि कुछ अच्छा लगे तो प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हेतु अवगत अवश्य करायें अथवा यदि कुछ सुधार की अपेक्षा हो तो सुझाव भी आमंत्रित हैं, ताकि अगले संस्करण में सुधार किया जा सके।

इस दृष्टि से पाठक प्रस्तुत कहानियों को पढ़ें और लाभान्वित हों ह इस मंगल भावना के साथ विराम।

ॐ नमः।



## आत्मकथ्य

ये कहानियाँ केवल कहानियाँ नहीं हैं,  
ये मात्र मनोरंजन की साधन भी नहीं हैं,  
कथाशैली पाठकों को प्रिय होने सेह  
कहानियों को मात्र माध्यम बनाया है ॥

ह ह ह

और इनके माध्यम से पाठकों कोह  
अध्यात्म का अमृतपान कराया है।  
प्रत्येक कहानी ऐसा कुछ कहती नजर आयेगी;  
जो पाठकों को सन्मार्ग दिखायेगी ॥

ह ह ह

‘जान रहा हूँ देख रहा हूँ’  
ज्ञाता-दृष्टा रहने का संदेश देती है ॥  
‘ऐसे क्या पाप किए’ अपनेह  
आर्त-रौद्रभावों से परिचय कराती है ॥

ह ह ह

‘परिणामों की विचित्रता’ चोर सेह  
भगवान बनने का इतिहास बताती है,  
‘स्वर्गवास हूँ नीको नाही’ स्वर्ग के लोभियों को  
वहाँ की दुःखद स्थिति का ज्ञान कराती है ॥

इसी तरह 'पूजन और प्रवचन'

पूजन से प्रवचन सुनने को श्रेष्ठ बताती है।

'पहले मुनि या मुनीम' मुनि बनने से पहलेह

भेदज्ञान करने का सबक सिखाती है ॥

ह ह ह

'मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं,'

दुर्व्यसनों से बचाती है,

सदाचरण करना सिखाती है;

ऊँच-नीच का कृत्रिम भेद मिटाती है ॥

ह ह ह

शेष चार कहानियाँ भीह

पापों से मुक्त करातीं, मान से मुक्ति दिलातीं।

चारों अनुयोगों का ज्ञान करातींह

और अपने स्वरूप की पहचान करातीं हैं ॥

ह ह ह

एक बार पढ़कर देखो तो सहीह

बार-बार पढ़ोगे और दूसरों को पढ़ाओगे।

अमृत पान करोगे, और घर-घर पहुँचाकरह

सातिशय पुण्य कमाओगे, शीघ्र मुक्ति पद पाओगे ॥

ह ह ह

ह पण्डित रतनचन्द भारिल्ल



## जान रहा हूँ, देख रहा हूँ

आषाढ मास की अष्टाह्निका का समय था, सिद्धचक्रपूजा विधान का वृहद् आयोजन चल रहा था। सारा समाज धार्मिक वातावरण के रंग में रंगा था। प्रातः पूजन-पाठ के बाद अध्यात्मरसिक, तार्किक विद्वान् स्थानीय पण्डितजी के प्रवचनसार परमागम पर मार्मिक प्रवचन चल रहे थे।

प्रवचनों में पण्डितजी नाना तर्कों, युक्तियों और उदाहरणों से आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को समझा रहे थे और स्वतंत्र स्व-संचालित वस्तु-व्यवस्था के आधार पर पर के कर्तृत्व का निषेध कर प्रत्येक प्रतिकूल-अनुकूल परिस्थिति में हर्ष-विषाद न करके ज्ञाता-दृष्टा रहने पर जोर दे रहे थे।

पण्डितजी ने अपने प्रभावी प्रवचन में यह भी बताया कि ह "धर्म परिभाषा नहीं प्रयोग है" अतः जो सिद्धान्त हमने यहाँ समझे-सुने हैं, उनका हमें अपने पारिवारिक, व्यापारिक और सामाजिक जीवन में प्रयोग भी करना चाहिए; क्योंकि घर-परिवार या व्यापार और समाज के क्षेत्र में ही ऐसे अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंग बनते हैं, जहाँ हमारे तत्त्वज्ञान की परीक्षा होती है। यदि हम अपने कार्यक्षेत्र में इन सिद्धान्तों के प्रयोग में सफल हुए तो ही हमारा तत्त्वज्ञान सुनना सार्थक है, अन्यथा पल्ला झाड़ प्रवचन सुनने से कोई लाभ नहीं होगा।"

पण्डितजी ने पुनः गीतमय भाषा में कहाह

“बस, जानन-देखन हारा, यह आत्मा हमारा।

जो जले नहीं अग्नि में, गले नहीं पानी में ॥

सूखे न पवन के द्वारा यह आत्मा हमारा ॥बस. ॥

सभी श्रोता सिर हिला-हिलाकर और तालियाँ बजा-बजाकर पण्डितजी के कथन का हार्दिक समर्थन करते हुए ह्र अध्यात्म के रस में मग्न होकर झूम रहे थे। साथ ही स्वर में स्वर मिलाकर सब एकसाथ बोल रहे थे ह्र “बस, जानन-देखन हारा, यह आत्मा हमारा।”

अतिथिरूप में बाहर से पधारे एक वयोवृद्ध ब्रह्मचारी यह सब आध्यात्मिक वातावरण का नजारा देख रहे थे, पर उनके मुखमण्डल पर एक विचित्र प्रकार का भाव झलक रहा था। ऐसा लगता था कि संभवतः उन्हें यह सब पसन्द नहीं आ रहा है।

वे संभवतः यह सोच रहे थे कि ह्र “यदि हम मात्र जानन-देखन हारे हैं तो यह हमारे काम-काज कौन कर जाता है? ‘कोई पर का कुछ कर ही नहीं सकता’ ह्र ऐसे उपदेश से तो पुरुषार्थ का ही लोप हो जायेगा और सब स्वच्छन्दी हो जायेंगे।”

वे यही सब सोचते रहे; परन्तु उससमय उन्होंने कोई प्रतिक्रिया प्रगट नहीं की, चुपचाप उठकर चले गये और अपनी बात कहने के लिए अपने अनुयायी नजदीकी मित्रों से मिलकर मध्यान्ह में अपने प्रवचन का प्रोग्राम बनवाया।

ब्रह्मचारी के प्रवचन की सूचना से सब श्रोता प्रसन्न थे, सभी श्रोता समय पर आ भी गये। सबको यह आशा और अपेक्षा थी कि एक वयोवृद्ध आत्मसाधक ब्रह्मचारीजी के अनुभवों का हमें विशेष लाभ मिलेगा; परन्तु ब्रह्मचारीजी ने प्रातःकालीन ‘जानन-देखन हारा’ के आध्यात्मिक वातावरण पर कटाक्ष करने के उद्देश्य से एक कहानी से अपना प्रवचन प्रारंभ किया।”

ब्रह्मचारीजी ने एक कहानी सुनाते हुए कहा ह्र “एक अध्यात्मप्रेमी सेठ और उसकी पत्नी प्रतिदिन की भाँति रात्रि दस बजे अपने शयन कक्ष में चले गये। जब वे गहरी नींद में सो गये तब मध्य रात्रि के बाद उनके शयन कक्ष में एक चोर ने प्रवेश किया। यद्यपि चोर सावधानी से कदम रख

रहा था, पर संयोग से उसका हाथ सेन्टर टेबल पर रखी घंटी पर पड़ गया। घंटी की आवाज से सेठानी की नींद खुल गई। आँखें खोल कर देखा तो नाइट बल्ब के मन्द-मन्द प्रकाश में एक व्यक्ति तिजोड़ी में चाबी मिलाते हुए दिखा।

सेठानी समझ गई, यह कोई चोर है। उसने पति को धीरे से जगाकर कहा ह्र “देखो! घर में चोर घुस आया और उसने तुम्हारी तकिया के नीचे से तिजोड़ी की चाबी भी निकाल ली है।

नींद तो सेठ की भी खुल गई थी, सेठ ने भी चोर को देख लिया था, पर वह अपने अध्यात्म का आलम्बन लेकर चुपचाप जानते-देखते रहे और उस सेठ ने पत्नी से धीरे से कहा ह्र “मैं सब जान रहा हूँ, देख रहा हूँ।”

चोर ने तिजोड़ी खोल ली, सारी धन-सम्पत्ति पोटली में बांध ली, अब जब वह कांख में दबाकर चल ही दिया तो पत्नी ने पुनः कहा ह्र “कब तक जानते-देखते रहोगे, कुछ करोगे नहीं? देखो, वह माल लेकर चला...”

पति ने कहा ह्र “तू शान्त रह! मैं अपना काम कर रहा हूँ।”

इतने में तो चोर सब माल लेकर नौ-दो ग्यारह हो गया।

तब पत्नी चिल्लाकर बोली ह्र “क्या खाक कर रहे हो? जानना-देखना भी कोई काम है? तुमने अपनी आँखों से देखते-देखते सब लुटा दिया। अरे! वह अकेला था और अपन दो थे, क्या उसे पकड़ नहीं सकते थे? पर तुम ऐसा क्यों करोगे? ज्ञाता-दृष्टा रहने का पाठ जो पढ लिया है।” यह कहते हुए वह मन ही मन सोचती है कि ह्र “इन्होंने तो इसी तरह सभी श्रोताओं को भी कायर और निकम्मा बना दिया है।”

ब्रह्मचारीजी ने कहानी पूरी करते हुए कहा ह्र इसतरह पण्डित पति के प्रति रोष प्रगट करती हुई बेचारी पत्नी रोती रह गई।”

ह्र ह्र ह्र ह्र

इस कहानी के माध्यम से ब्रह्मचारीजी ने व्यंग्य करते हुए यह सिद्ध करना चाहा कि ये अध्यात्म की बातें करनेवाले इसीतरह कायरता की बातें करते रहेंगे, मुँह छुपा कर डरपोक बने सोते रहेंगे और लुटते रहेंगे।

ब्रह्मचारीजी के द्वारा अध्यात्म की हँसी उड़ानेवाले इस कटाक्ष भरे प्रवचन को सुनकर पास में बैठे अध्यात्मरसिक स्थानीय पण्डितजी से नहीं रहा गया। अतः उन्होंने अंत में बोलने की अनुमति लेकर कहा ह “ब्रह्मचारीजी ! आपने उदाहरण तो बहुत अच्छा दिया, पर इसमें आप इतना अंश और जोड़ लें कि ह “धन की लोभी पत्नी को चोर धन ले जाते तो दिखा, पर उसे उस चोर की कमर पर लटकती कटार नहीं दिखी, जो कि उसके पति को दिख रही थी। सेठ यह भी जानता था कि ह चोर को रोकना-टोकना तो बहुत दूर, यदि चोर को यह भी पता लग जाता कि ह ‘सेठ-सेठानी ने मुझे देख लिया है’ तो वह माल के साथ हम दोनों की जान भी ले जाता, पुलिस कार्यवाही के लिए वह हमें जिन्दा ही नहीं छोड़ता।”

यदि ब्रह्मचारीजी! इतना अंश अपने उदाहरण में और जोड़ दो तो उदाहरण बेजोड़ हो जाय।

ह ह ह ह

सेठ ने शास्त्र में यह भी पढ़ा था कि “पैसे का आना-जाना तो पुण्य-पाप का खेल है। पुण्योदय से छप्पर फाड़कर चला आता है और पापोदय से तिजोड़ी तोड़ कर चला जाता है।” अतः उसने सोचा ह “पैसों के पीछे प्राणों को जोखिम में नहीं डालना चाहिए।”

सेठ ने सेठानी को समझाया कि ह “पैसा तो उस कुँए के पानी की भांति है, जिस कुँए की झिर चालू है। कृषक उस कुँए से दिन भर चरस चलाकर सम्पूर्ण पानी को खेतों में सींच कर कुँआ खाली कर देता है। वह खाली कुँआ प्रतिदिन प्रातः फिर उतना ही भर जाता है, कुँए की तरह तिजोड़ी को भी कोई कितनी भी खाली कर दे, पुण्योदय की झिर से वह

पुनः भर जायेगी। चिन्ता क्यों करती है ? अपने भाग्य पर भरोसा रख और धर्माचरण में मन लगा, धर्माचरण धन आने का भी स्रोत है।”

पण्डितजी के इस पाँच मिनट के उद्बोधन ने ब्रह्मचारीजी को अपने आध्यात्मिक अज्ञान का ज्ञान करा दिया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वस्तुतः एक-दूसरे द्रव्य का कर्ता-भोक्ता नहीं है; क्योंकि दो द्रव्यों के बीच अत्यन्ताभाव की वज्र की दीवाल है। फिर क्या था ह ब्रह्मचारीजी ने संकल्प किया कि इन पण्डितजी के पास रहकर मुझे कुछ दिन पढ़ना चाहिए। अपने संकल्प के अनुसार उन्होंने चार माह तक पण्डितजी के आध्यात्मिक प्रवचन सुने और अंत में पण्डितजी का आभार मानते हुए बोले ह “भैया हमें तो इन बातों की खबर ही नहीं थी। अब हमारी समझ में आया कि आत्मा का धर्म तो सचमुच मात्र “जानना-देखना” ही है तथा एक जीव दूसरे का भला-बुरा करने लगे तो उसके पुण्य-पाप का क्या होगा।” कहा भी है ह

स्वयं किए जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते।

करे आप फल देय अन्य तो स्वयं किए निष्फल होते ॥

हर बात को, हर वस्तु को और हर घटना को देखने के दो पहलू हो सकते हैं, जहाँ फूल हैं वहीं काँटें भी हैं। जो फूलों को देखते हैं, वे खुश रहते हैं और काँटों-काँटों को ही देखते हैं, वे दिन-रात रोते ही रहते हैं।

इतनी समझ तो अनपढ़ कुम्हार जैसे लोगों में भी होती है कि उन्हें गधे जैसे पशु में भी मन्दबुद्धि की कमी नहीं दिखती; बल्कि ईमानदारी, सीधापन, परिश्रमशीलता और शुद्ध शाकाहारी होने के गुण ही दिखाई देते हैं। तभी तो कुम्हार गधों का प्रेमपूर्वक पालन-पोषण और उपयोग करते हैं। काश! हम भी ऐसी गुणग्राहकता सीख लें तो इस दुनियाँ का नक्शा ही बदल सकता है।

ह ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-१४



## मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं

“कोई भी काम अपने आप में छोटा या बड़ा नहीं होता तथा उस काम के अनुसार विभाजित जातियाँ भी कोई नीच-ऊँच नहीं होती।

देखो न! आज अरबों-खरबों रुपयों की लागत से व्यवसाय-उद्योग करने वाली रिलायंस जैसी बड़ी-बड़ी कंपनियाँ भी साक-भाजी बेच ही रही हैं और नगरनिगम जैसी शासकीय संस्थायें भी नगर की सफाई का काम करतीं/करातीं ही हैं। अहिंसा प्रेमी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सभी छोटे-बड़े काम अपने हाथों से करके बड़प्पन का परिचय दिया ही था। इन छोटे-बड़े कामों का नीच-ऊँच से क्या वास्ता?

अरे! नीच-ऊँचपना होता है अपने निकृष्ट एवं उत्कृष्ट आचरण से। हिंसा-झूठ-चोरी-बलात्कार आदि अनैतिक पाप कार्य करना, शराब, चरस, गाँजा आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना तथा जुआ आदि दुर्व्यसनों का सेवन करना निकृष्ट आचरण हैं तथा इनसे विपरीत ह्व अहिंसा-सत्य, संयम, सदाचार, दया-दान, परोपकार आदि उत्कृष्ट आचरण हैं। इन्हीं भले-बुरे आचरणों से नीच-ऊँच की पहचान होती है।

जो निकृष्ट आचरण करते हैं, उनमें स्वतः ही हीन भावना पनपने लगती है और धीरे-धीरे वे दूसरों की दृष्टि में भी नीची श्रेणी में गिने जाने लगते हैं। जिनका आचरण-उत्कृष्ट होता है, वे स्वयं की दृष्टि में एवं दूसरों की दृष्टि में भी ऊँची श्रेणी में आ जाते हैं।

दूसरों की निन्दा एवं अपनी प्रशंसा करने तथा दूसरों के सद्गुणों को छुपाने और अपने असद्गुणों को छिपाने से भी नीच गोत्र कर्म का बंध

होता है, जिसके फल में जीवों को नीच संज्ञा मिलती है।”<sup>१</sup>

ऐसे विचार हैं बुद्धिसेन के। अतः उसे ऊँची श्रेणी का सन्मान मिलना और गाँव के मुखिया की मान्यता मिलना स्वाभाविक ही है।

बुद्धिसेन के उपर्युक्त विचारों से अवगत कराते हुए उसके पिता चतरसेन ने गर्व से आगे कहा ह्व “यद्यपि वह साक्षर ही है। ठीक से हिन्दी भी लिख-पढ़ नहीं सकता तो भी वह अपने कर्तव्यों के प्रति सदैव सजग रहने से और जन्मजात बुद्धि के पैसेपन के कारण कभी किसी के धोखे में नहीं आया और किसी को धोखा देना तो उसके स्वभाव में है ही नहीं।

लोग कहते हैं कि ह्व ‘बुद्धिसेन उड़ती चिड़िया परख लेता है।’ अर्थात् वह चेहरा देखकर जान जाता है कि अमुक व्यक्ति कैसा है? और उससे कैसा व्यवहार करना चाहिए।”

ह्व ह्व ह्व ह्व

चतरसेन ने यह भी बताया कि ह्व “बुद्धिसेन का बाल सखा वकील विद्याधर कानूनी विद्या का विशेषज्ञ है। वह कानूनी पेचीदगियों से भी सुपरिचित हो गया है। इस पेशे में आने वाले पहले से ही यह तो जानते ही हैं कि ‘कानून अंधा होता है।’ इस कारण ह्व सच को झूठ और झूठ को सच साबित करना आज अधिकांश वकीलों के बाँयें हाथ का खेल हो गया है।

वकील विद्याधर का ऐसे ही वकीलों में सबसे ऊँचा नाम है। उसके बारे में तो हत्या जैसे जघन्य अपराध करने वाले अपराधियों के मुख से यहाँ तक कहते सुना जाता है कि ह्व ‘जब तक विद्याधर वकील जिन्दाबाद है, तब तक कौन ऐसा माई का लाल है जो हमें हवालात की हवा खिला सके।’

बात भी कुछ ऐसी ही है। विद्याधर वकील फौजदारी मामलों में सच

को झूठ, झूठ को सच साबित करने में माहिर है। उसके पास कुछ ऐसे पेशेवर गवाह भी पलते-पुसते हैं, जिनसे वह जो कहलवाना चाहे, कहलवा कर अपराधियों को भी निरपराधी सिद्ध करके छुड़ा लेता है। इसके बदले में वह उनसे मनमानी फीस वसूल करता है।

इसतरह उसने पैसा तो खूब कमा लिया, परन्तु पैसे से उपलब्ध सभी आधुनिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी उसे आत्म शान्ति नहीं है।” विद्याधर की यह स्थिति देखकर बुद्धिसेन को विचार आया कि ह “कैसे हैं ये न्यायाधीश? और कैसे हैं ये कानून के रक्षक वकील? जिनके होते हुए भी दिनों-दिन अपराध बढ़ ही रहे हैं? इनसे अच्छे तो हम जैसे अनपढ़ सरपंच ही अच्छे हैं जो न्याय करने में दूध का दूध और पानी का पानी करके जनता की सच्ची सेवा करते हैं।”

ह ह ह ह

चतरसेन ने बुद्धिसेन को बताया ह “राजाओं के जमाने में तो राजा ही स्वयं न्यायाधीश हुआ करते थे। तब वकीलों एवं कानून की बड़ी-बड़ी किताबों का कोई काम ही नहीं था फिर भी सब ठीक-ठाक चलता था।

‘ये वकील और ये न्यायालय (कोर्ट-कचहरियाँ) कब से/कैसे/क्यों आ गये?’ ह इन प्रश्नों का उत्तर कठिन नहीं है, क्योंकि इनका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। जब विदेशियों द्वारा राज्य सत्ता हथिया लेने पर न्याय करने वालों एवं न्याय पाने वालों के बीच भाषाओं की दूरियाँ बढ़ीं, तब वादी-प्रतिवादियों की बातें न्यायाधीशों को समझाने तथा न्यायाधीश की बातें वादी-प्रतिवादियों को समझाने के लिए जो दुभाषिया बिचौलिया बने, उन्हें ही वकील कहा गया।

वे वकील प्रारंभ में तो केवल दु-भाषियों का ही काम करते थे तथा शासन-प्रशासन के द्वारा निर्धारित न्याय के नियमों की रक्षा करते हुए वादी-प्रतिवादियों को न्याय दिलाने का पवित्र काम करते थे, और उसके बदले में आजीविका के लिए वादी-प्रतिवादियों से उचित पारिश्रमिक लेते थे।

धीरे-धीरे कानूनों की पेचीदगियाँ बढ़ती गईं और अधिकांश वकील अधिक धन के लालच में पड़कर कानून को तोड़-मरोड़कर उनकी व्याख्यायें बदल-बदल कर कानून की रक्षा के बजाय अपराधियों की रक्षा करने लगे और उसके बदले में मनमाना धन वसूल करने लगे।

इस तरह कालान्तर में वह शुद्ध-सात्विक वकालात का पेशा भी न्याय-नीति को ताक में रखकर काली कमाई का व्यवसाय बन गया।”

ह ह ह ह

वकील विद्याधर बुद्धिसेन के गाँव का ही मूल निवासी है। वकालात पढ़ने के लिए वह नजदीक के नगर में आया था, पढ़ने के बाद वहीं वकालात करने लगा तथा बुद्धिसेन अभी भी गाँव में ही रहता है। दोनों एक-दूसरे के व्यक्तित्व और कर्तृत्व से तो भली-भाँति परिचित हैं ही, विद्याधर बुद्धिसेन के यश से भी सुपरिचित हैं, इसकारण विद्याधर को सदैव यह बात कचौटती रहती थी कि “जहाँ एक ओर इसी जिले के छोटे से गाँव में रहने वाला अनपढ़ किसान का बेटा बुद्धिसेन जो मात्र साक्षर होने पर भी थोड़ी-सी खेती और साधारण-सी साहूकारी करके गाँव का मुखिया और ग्रामसभा के चुनाव जीतकर ग्राम पंचायत का यशस्वी सरपंच भी बन गया है, वहीं दूसरी ओर पढ़ा-लिखा होकर भी मैंने अधिक धनार्जन के लालच में इस काम में पाप की कमाई करने के सिवाय और पाया ही क्या है? धर्म-कर्म तो कुछ किया ही नहीं, समाज की दृष्टि में भी नगण्य ही रहा हूँ।

इसके लिए तो मुझे बुद्धिसेन को ही अपना गुरु बनाना पड़ेगा। मैं उससे पूछूँगा कि तुमने अनपढ़ होकर भी यह सब ज्ञान एवं मान-सम्मान कैसे प्राप्त किया?”

एक दिन वकील विद्याधर ने उस बुद्धिसेन से आश्चर्यचकित होकर पूछा ह “अरे भाई! तुम्हें तो काला अक्षर भैंस बराबर है, तुम तो हिन्दी भी ठीक से नहीं लिख-पढ़ सकते; फिर भी तुम कृषिपण्डित हो गये हो; तुम



गाँव के मुखिया भी हो और ग्राम पंचायत के सरपंच भी! यह सब क्या चक्कर है? कुछ समझ में नहीं आया।”

बुद्धिसेन ने मुस्कराते हुए सरल भाव से कहा ह “अरे भाई! इसमें मेरा क्या है? गाँव वालों ने मुझ पर विश्वास करके जनमत से जो जिम्मेदारी मुझे सौंपी है, मैं तो उसे ही निभा रहा हूँ।”

वकील विद्याधर ने व्यंग्य में कहा ह “ये तो सब ठीक है; परन्तु पेट की बात बताओ। अनपढ़ होकर भी तुमने कैसे हथिया लिया यह कृषिपण्डित जैसे सम्मान का पद? तथा किसने बना दिया तुम्हें मुखिया? और ग्रामसभा का चुनाव जीतकर कैसे बन गये सरपंच? तुम कोई कानूनी दावपेंच भी तो नहीं जानते और राजनीति के खेल में भी तुम निपुण नहीं दिखते।”

ह ह ह ह

सच को झूठ और झूठ को सच्चा सिद्ध करने वाले वकील लोग तथा दाव-पेंचों के द्वारा राजनीति का खेल खेलने वाले राजनेता इससे अधिक और सोच भी क्या सकते हैं? अतः वकील का आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। वे यह तो सोच भी नहीं सकते कि ‘ये पद न चाहने पर भी, बिना दाव-पेंच के एवं बिना सिफारिश के भी अपनी निःस्वार्थ सेवा भावना और कर्तव्य निष्ठा से सहज प्राप्त हो सकते हैं।”

बुद्धिसेन ने सहज भाव से कहा ह “विद्याधरजी! आप कैसे वकील हो? क्या आपको यही मालूम नहीं कि ‘कृषिपण्डित’ का सम्मान पढ़ाई से नहीं और सिफारिशों से भी नहीं; बल्कि कम खेती में अधिक फसल पैदा करने से सहज ही मिलता है और गाँव का मुखिया एवं ग्राम पंचायत का सरपंच भी मैं गाँववालों का हरसंभव सहयोग करने और न्याय दिलाने में सफलता के कारण हूँ। इन सबके लिए मुझे आप जैसे कागजी प्रमाणपत्रों की जरूरत नहीं पड़ी। इसके लिए तो जनहित में काम करने की जरूरत होती है। **जनहित की भावना से जनमत स्वतः अपने पक्ष में हो जाता है।** मैं तो जनता की सेवा करना अपना कर्तव्य समझकर करता हूँ, बस,

इसीकारण जनता का प्रेम मुझे मिलता है। जनमत अपने पक्ष में करने के लिए मुझे कभी किसी के पास जाना नहीं पड़ा।”

वकील विद्याधर कृषि पण्डित बुद्धिसेन की कर्तव्यनिष्ठा, सरलता और ईमानदारी से तो प्रभावित हुआ ही, उसके सोचने के तरीके से भी प्रभावित हुआ। अतः उसने आश्चर्य मिश्रित हर्ष व्यक्त करते हुए कहा ह “तुम्हारा कहना बिल्कुल सही है। अभी भी दुनियाँ में अच्छे और ईमानदार लोगों के कद्रदान हैं; परन्तु अनपढ़ होकर भी तुम यह सब कैसे कर पाते हो? मुझे तो लगता है कि तुम में कोई दैवी शक्ति है या तुमने मंत्र-तंत्र द्वारा कोई ऐसी चमत्कारिक अन्तरंग योग्यता प्राप्त कर ली है, जिससे आप यह सब कर लेते हो?”

बुद्धिसेन ने कहा ह “अरे भाई! ऐसी कोई बात नहीं है। मैं स्वयं भी मंत्र-तंत्र और चमत्कारों से लौकिक सिद्धियाँ साधने में विश्वास नहीं करता। बस, मुझे अपने सत्कर्म, पुरुषार्थ और भाग्य पर भरोसा है। अतः मैं धनार्जन के लिए भी कोई अनैतिक साधन नहीं अपनाता। मैं तो बस कृषि करता हूँ और ऋषि जैसा पवित्र जीवन जीता हूँ। गरीब जनता का सहयोग करने की भावना से बैंक की ब्याज दर पर ही थोड़ी-सी साहूकारी भी कर लेता हूँ, इससे अनपढ़ किसानों को बैंकों के चक्कर नहीं काटने पड़ते और बैंकों के बाबुओं की खुशामद नहीं करनी पड़ती।

रही बात लिखा-पढ़ी की सो आज के युग में पढ़े-लिखों की क्या कमी है? रोजगार कार्यालयों में बे-रोजगार डिग्री धारियों की रोजाना लंबी लाईन लगी रहती है। उन्हीं में से कोई ऐसे ईमानदार, मेहनती मनुष्य मिल जाते हैं जो लिखा-पढ़ी तो सही कर लेते हैं, पर वे किसी नये काम का निर्णय नहीं ले पाते। जबकि **सही निर्णय ही सफलता का मूल मंत्र** है, सौभाग्य से उस लायक बुद्धिबल मुझे सहज प्राप्त है। मैं जो भी निर्णय लेता हूँ, वह मुझे सफलता के शिखर तक पहुँचा देता है। बस, यही मेरी सफलता का राज है।”

कृषिपण्डित बुद्धिसेन ने विद्या एवं बुद्धि में अन्तर बताते हुए कहा ह “यह तो आप जानते ही होंगे कि अर्जित ज्ञान को विद्या कहते हैं, जो कि पुस्तकों और गुरुजनों से प्राप्त होती है तथा जन्मजात प्रकृति से प्राप्त प्रतिभा को बुद्धि कहते हैं। जिनमें विद्या के साथ वह बुद्धि होती है, उसके तो सोने में सुगंध की कहावत चरितार्थ हो जाती है; परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ‘विद्या से बुद्धि उत्तम होती है’ इस बात की सूचक मैंने पंचतंत्र पुस्तक की एक कहानी सुनी थी, जो इसप्रकार है ह

“चार पण्डित बनारस से पढ़कर अपने-अपने घर लौट रहे थे। रास्ते में उन्हें एक मरे हुए सिंह की अस्थियाँ, माँस और चमड़ा आदि सभी अंग बिखरे पड़े मिले। उन चारों में से एक पण्डित बोला ह ‘मुझे ऐसी विद्या आती है, जिससे मैं इस मरे हुए सिंह के सभी अंगों को इकट्ठे कर सकता हूँ।’ दूसरा बोला ह ‘मैं इकट्ठे किए अंगों से सिंह को साकार रूप दे सकता हूँ।’ तीसरा पण्डित बोला ह ‘मैं सिंह के साकार रूप को जीवित कर सकता हूँ।’

जब तीनों पण्डित अपनी-अपनी करामात दिखाने को आमादा ही हो गये तो चौथा पण्डित, जो बुद्धिमान भी था, उसने कहा ह ‘ठहरो! पहले हम सब पास में खड़े पेड़ पर चढ़ जाते हैं, फिर वृक्ष पर से ही तुम भी अपनी विद्या का प्रदर्शन करके सिंह को जीवित करना; अन्यथा वह सिंह जीवित होते ही हम सबको मार कर खा जाएगा।’

जब चौथे पण्डित की बात उन तीनों बुद्धिविहीन पण्डितों की समझ में नहीं आई तो चौथा पण्डित तो तुरन्त पेड़ पर चढ़ गया और शेर जीवित होते ही उन तीनों को मारकर खा गया।”

विद्या से बुद्धि की श्रेष्ठता की प्रतीक उक्त कहानी के संदर्भ में ह पंचतंत्र के लेखक विष्णु शर्मा ने निम्नांकित श्लोक में भी यही कहा है ह

“वरं बुद्धि न सा विद्या, विद्याया बुद्धिरुत्तमा।  
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंह कारकाः।

अर्थात् विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ होती है, बुद्धिविहीन विद्या घातक होती है। जैसे वे सिंह को जीवित करने वाले पण्डित जीवन से हाथ धो बैठे।”

यह कहानी सुनाकर बुद्धिसेन ने कहा ह “यदि हम अपनी जन्मजात प्राप्त बुद्धिबल से कुछ अच्छे काम कर रहे हैं तो उन्हें मंत्र-तंत्रों का चमत्कार कहकर पाखंडी मंत्र-तंत्र वादियों में पनपते पाखण्डवाद को प्रोत्साहित न करें।”

ह ह ह ह

बुद्धिसेन ने अपनी आप बीती सुनाते हुए आगे कहा ह “वकील साहब! यह तो आप जानते ही हो कि मैं भी उसी गाँव में जन्मा हूँ, जहाँ पढ़ाई का कोई साधन नहीं था और मेरे पिताजी नगर के विद्यालय में भेजकर पढ़ा सकें, ऐसी उनकी आर्थिक हालत नहीं थी। इस कारण मैं गुरु मुख से विद्या का विशेष अर्जन तो नहीं कर सका, परन्तु मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों से जन्मजात ही मुझे ऐसी प्रतिभा प्राप्त है, जिसकी स्व-पर हित करने के लिए मुझे जरूरत थी। परहित करने और दूसरों को पीड़ा न पहुँचाने की प्रेरणा मुझे तुलसीदासजी के इस कथन से मिली ह

‘परहित सरस धर्म नहीं माई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥’

वकील साहब! कोई भी व्यक्ति सभी विषयों का विशेषज्ञ नहीं होता। एक विषय का विशेषज्ञ अन्य विषयों में तो लगभग अनभिज्ञ ही होता है, जो व्यक्ति इस सत्य को समझ लेते हैं, उन्हें अपने अर्जित ज्ञान का अभिमान नहीं होता और वे दूसरों को हीन दृष्टि से नहीं देखते।”

अनपढ़ बुद्धिसेन की बुद्धिमत्ता पूर्ण गंभीर बातें सुनकर विद्याधर अवाक् रह गया। वह सोचने लगा ह “कृषक बुद्धिसेन की यह बात कितनी सटीक है कि ह कोई भी व्यक्ति विविध विषयों का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। बात तो बुद्धिसेन की शत-प्रतिशत सही है। यदि मुझसे ही कोई पूछले कि ह कौन सी फसल कब बोई जाती है? तो मैं भी तो यह नहीं बता सकता।

मैं भले ही कानून का विशेषज्ञ हूँ, पर कानून के सिवाय और मुझे आता ही क्या है? कृषि करना तो दूर, मैं तो एक कप चाय भी नहीं बना सकता। अपने कोट के टूटे बटन भी नहीं टांक सकता। फिर भी पता नहीं क्यों? मैं स्वयं को सबसे बड़ा वकील ही नहीं, सबसे बड़ा विद्वान मानकर अहंकार के आकाश में उड़ानें भरने लगा।

यह स्थिति न केवल मेरी है, मेरे जैसे अपने-अपने विषय के सभी विशेषज्ञों की यही मनोवृत्ति है। जबतक व्यक्ति अपनी इस मनोवृत्ति को नहीं बदलेगा तब तक स्वयं को सबसे बड़ा विद्वान समझता रहेगा। ऐसे लोग अभिमान के आकाश में कटी पतंग की भाँति भटकते ही रहते हैं।”

ह ह ह ह

विद्याधर ने सोचा ह “पूर्वजन्म के पुण्य के फल में कानून का विशेषज्ञ बनकर भी मैंने गुण्डों और हत्यारों की सुरक्षा करके पाप कार्यों को प्रोत्साहन के सिवाय और किया ही क्या है? पिछले पुण्य के फल खाकर अगले जन्म के लिए पाप के बीज ही बोए हैं।

अब मैं जानबूझकर अपराधियों के बचाव पक्ष के मामले नहीं लूँगा। और अपने वकालत के व्यवसाय से निरपराधियों को सही न्याय दिलाने में ही पूरा प्रयत्न करूँगा।”

वकील विद्याधर ने पुनः विचार किया ह “जैनकुल में जन्म लेने मात्र से ही कोई जैन नहीं हो जाता, यदि सौभाग्य से मेरा जैन कुल में जन्म हो गया है तो अब मुझे धर्म का वह मर्म समझना चाहिए, जिससे मैं अब तक वंचित हूँ, तभी मेरा जैन होना सार्थक होगा”

वकील विद्याधर को विचारों में डूबा देख बुद्धिसेन ने कहा ह “वकील साहब क्या सोच रहे हो? किन विचारों में डूब गये हो? अधिक सोचने और चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मैं सब समझ गया। आप यह सोच रहे हैं कि ‘मुझे वकालत के अलावा कुछ भी तो नहीं आता। वकालत में

भी मैंने पापभावों के सिवाय भला काम कुछ भी तो नहीं किया। फिर भी मुझे यह बड़प्पन का अहंकार क्यों? धर्म के क्षेत्र में भी तो मुझे कुछ भी नहीं आता, फिर भी बड़प्पन के चक्कर में कभी धर्म के दो शब्द भी तो नहीं सुने। अब तो मुझे अपने बड़प्पन को बाजू में रखकर धर्म चर्चा सुनना ही होगी।”

वकील साहब बोले ह “अरे! मैं तो तुम्हें ‘अंधों में काने राजा’ की भाँति गाँव के अनपढ़ व्यक्तियों का मुखिया समझ रहा था; तुम तो मनोविज्ञानी और धर्म के मर्मज्ञ भी हो।”

बुद्धिसेन ने कहा ह “ऐसी कोई बात नहीं है, यह तो मनोविज्ञान की छोटी-मोटी बातें हैं कि मनुष्य कब/क्या सोचता है? बस, ऐसा अनुमान लगाकर ही मैंने कुछ कह दिया है।”

बुद्धिसेन ने आगे कहा ह “यह तो आप समझ ही गये होंगे कि ह मनुष्य भले ही अपने विषय के विशेषज्ञ हों; परन्तु वे वस्तुतः अन्य विषयों में तो लगभग शून्य ही होते हैं। फिर न जाने क्यों? आप जैसे बहुत कम व्यक्ति अपनी इस कमी का अहसास कर पाते हैं। अधिकांश का अन्तरात्मा तो इस कमी को स्वीकार ही नहीं करता। इस कारण वे स्वयं को बहुत बड़ा समझदार और दूसरों को तुच्छ समझने लगते हैं और इसीकारण छोटे-मोटे विद्वानों से तो वे धर्म की बात सीखते नहीं है, और बड़े विद्वानों की बड़ी बातें उनकी समझ में आती नहीं हैं, इसकारण उनका पूरा अमूल्य मनुष्य जीवन मानकषाय के चक्कर में ही चला जाता है।”

बुद्धिसेन की बोधवर्द्धक बातों से वकील विद्याधर को ऐसा लगा कि “मैंने जीवन का सारा महत्त्वपूर्ण-सारभूत समय वकालत के ज्ञान में यूँ ही बर्बाद कर दिया है। यदि मुझे प्रौढ़ावस्था में ही बुद्धिसेन जैसे धर्मज्ञ का सान्निध्य मिला होता तो मैं भी धर्म और दर्शन के उन रहस्यों का ज्ञाता होता, जिनमें निराकुल सुख-शान्ति के उपाय निहित हैं।”

यही भाव जब विद्याधर ने बुद्धिसेन के समक्ष व्यक्त किया तो बुद्धिसेन

ने यह कहा हूँ “वकील साहब! चिन्ता करने की कोई बात नहीं। इस विषय में आचार्यों का कहना है कि हूँ ‘ज्ञेय पदार्थों के अनुसार ज्ञान नहीं होता, बल्कि ज्ञान पर्याय की तत्समय की योग्यता के अनुसार ज्ञेय पदार्थ ज्ञान के विषय बनते हैं।’ अभी तक के तुम्हारे ज्ञान की पर्याय में वकालत के कानून जानने की ही योग्यता थी, वे ही ज्ञान के विषय बनना थे सो वे ही बनें। अब, जब आपके ज्ञान में ‘तत्त्वज्ञान’ के ज्ञेय बनने की योग्यता आई तो तुम्हारी रुचि धर्म का मर्म समझने के लिए स्वतः जाग्रत हो गई।

इस संदर्भ में जैनदर्शन का यह सिद्धान्त समझने योग्य है कि हूँ “प्रत्येक ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय सुनिश्चित है। कौनसी ज्ञान की पर्याय किस समय किस ज्ञेय (पदार्थ) को जानेगी? हूँ यह सब सुनिश्चित है।” ज्ञान व ज्ञेय का ऐसा ही स्वतंत्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है।

वकील विद्याधर ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा हूँ “यह तो गजब का सिद्धान्त है, यदि वस्तुतः यह बात है तब तो जीव को जानने की जल्दबाजी करने की भी जरूरत नहीं रहेगी। पर बात गंभीर है, इसे ऐसे चलते-फिरते या खड़े-खड़े नहीं समझा जा सकता। इसके लिए तो जैनदर्शन के गहराई से अध्ययन-मनन की जरूरत है; किन्तु चिन्ता की बात इसलिए भी नहीं है कि जब बुद्धिसेन जैसे अनपढ़ आदमी ने धर्म के मर्म को समझकर अपना मनुष्य जीवन सार्थक कर लिया और अगले जन्म के लिए सुख-शान्ति के बीज बो लिए तो मैं क्यों नहीं समझ सकूँगा?

हाँ, अब मुझे धर्म का मर्म जानने के लिए अपने वकालत के बड़प्पन को एक बाजू रखकर बुद्धिसेन से ही पूछना होगा कि उसने धर्म के प्रयोजनभूत तत्त्वों को जानने के लिए क्या किया और एतदर्थ मुझे क्या करना होगा?”

विद्याधर के पूछने पर बुद्धिसेन ने बताया कि हूँ “आत्महित के लिए बहुत भारी शास्त्रीय पाण्डित्य की जरूरत नहीं है, शास्त्र का अधिक ज्ञान तो मुझे भी नहीं है, फिर भी नियमित रूप से सामूहिक स्वाध्याय में जाने से मैं

धर्म के मर्म को समझने लगा हूँ। सर्वप्रथम बात यों बनी कि हूँ “एक दिन मैं पिताजी के कहने से उनके साथ देव-दर्शन करने मन्दिर चला गया तो मुझे यह जानने की इच्छा हुई कि हूँ ‘ये देव कौन हैं? सब लोग प्रतिदिन इनके दर्शन क्यों करते हैं? क्या लाभ होता है, इनके दर्शन से?’

मैंने पिताजी से ये सब प्रश्न पूछे तो उन्होंने कहा हूँ ‘तू मेरे साथ स्वाध्याय में चला कर। वहाँ पण्डितजी यही सब तो समझाते हैं। पण्डितजी के आ जाने से अब तो पाठशाला भी खुल गई है। पाठशाला में पण्डित बच्चों, बूढ़ों और महिलाओं को प्रयोजन भूत सभी बातों को समझाते हैं। और तो सब वहाँ बताते ही हैं, साथ में यह भी बताते हैं कि यह संसारी दुःखी जीव सुखी कैसे हों; आत्मा से परमात्मा कैसे बनते हैं? आदि।

पिताजी की प्रेरणा से मैंने पहले तो प्रतिदिन पाठशाला जाना प्रारंभ किया और बाद में सामूहिक स्वाध्याय में भी जाने लगा।

इसी का फल है कि मैं बहुत कुछ धर्म का मर्म समझने लगा हूँ। अगर तुम्हें धर्म का मर्म जानने की लगन लगी है तो तुम्हें भी वही सब करना होगा जो मैंने किया है।

बुद्धिसेन से मार्गदर्शन और प्रेरणा पाकर वकील विद्याधर ने यथासंभव प्रतिदिन देव-दर्शन और स्वाध्याय करने का संकल्प ले लिया। नियमित स्वाध्याय से कुछ ही दिनों में उसे ऐसा लगने लगा कि जैनदर्शन के सिद्धान्त तो अद्भुत हैं, मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं थी।’

●



## पूजन और प्रवचन

वर्षाऋतु, भादों का महीना, शुक्लपक्ष की पंचमी, पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन। मौसम एकदम सुहावना, न अधिक गर्मी, न अधिक पानी।

रिमझिम वर्षा की बूँदें पर्व के स्वागतार्थ ही मानो मोती बनकर रत्नवृष्टि कर रहीं थीं।

वैसे तो ये पर्यूषण पर्व वर्ष में ३ बार आते हैं, परन्तु भाद्रपद का यह पर्व विशेष उत्साह से मनाया जाता है; क्योंकि इन दिनों व्यापार मन्दा होने से वणिकों को सबसे अधिक फुरसत रहती है।

वर्षाऋतु के इस पर्व में साधु-सन्यासियों के चातुर्मास होने से उनके प्रवचनों का लाभ भी मिल जाता है। 'आम के आम गुठलियों के दाम' कहावत के अनुसार यह वणिक वर्ग धन कमाने की भाँति धर्म कमाने में भी चतुर होता है। अतः वह लाभ का कोई भी अवसर चूकता नहीं है।

यह पर्व न केवल जैनों का है, बल्कि जन-जन का है, सार्वजनिक है; परन्तु आजकल यह बनियों का बनकर रह गया है। यही कारण है इस पर्व को अधिकांश वणिक वर्ग ही उत्साह से मनाता है। अस्तु :ह

ह ह ह ह ह  
सूर्योदय के साथ ही जिनमन्दिरों में चहल-पहल प्रारंभ हो जाती है। जिनप्रतिमाओं का प्रक्षाल करने वालों की संख्या बढ़ जाती है। मानो वे इन दस दिनों में ही भगवान के बिम्बों का प्रक्षाल करके पूरे वर्षभर किए पापों का प्रक्षालन कर लेना चाहते हैं।

पूजन सामग्री के सुसज्जित थालियाँ ले-लेकर भक्तगणों के झुण्ड सामूहिक और व्यक्तिगत पूजन करने में सक्रिय हो जाते हैं। जो वर्षभर

दिखाई नहीं देते, ऐसे नये-नये भदैया भैया भी इन दस दिनों में पूजा-पाठ कर वर्षभर के लिए पुण्य का संचय कर लेना चाहते हैं, पर ऐसा होना संभव नहीं है। एतदर्थ उन्हें पुण्य-पाप का स्वरूप एवं पुण्य के संचय और पापों के विनाश करने का उपाय भली-भाँति समझना होगा, जो प्रतिदिन नियमित रूप से एक घंटा स्वाध्याय करने से ही संभव है।

पर ये भक्त घंटों तक अनेक पूजनें करते-करते थकते नहीं हैं। उनका वश चले तो दिनभर पूजा ही करते रहें; जबकि पूजन के सम्बन्ध में सही समझ कुछ ही व्यक्तियों में होती है। अधिकांश तो देखा-देखी ही करते हैं।

पूजा क्या है, किसकी की जाती है, क्यों की जाती है, पूजा करने का मूल प्रयोजन क्या है? यह न तो अधिकांश व्यक्ति समझते हैं और न समझना चाहते हैं।<sup>१</sup>

पूजन के पश्चात् ज्यों ही प्रवचन प्रारंभ हुआ नहीं कि एक-एक करके अधिकांश भक्तजन तो खिसक ही जाते। जो थोड़े से परम्परावादी व्यक्ति बचते हैं सो वे भी दीवार के सहारे टिककर बैठे-बैठे ऊँघने लगते हैं। पूजन करते-करते बिचारे थक जो जाते हैं।

ह ह ह ह ह  
भक्तों का यह नजारा चातुर्मास कर रहे साधु संघ को अच्छा नहीं लगा। दूसरे दिन संघ के आचार्यश्री ने समाज के मुखिया को बुलाकर सूचित किया कि ह 'कल सामूहिक पूजन में मुनि संघ सम्मिलित होगा।'

यह खबर करेन्ट की तरह सब समाज में फैल गई। सभी प्रसन्न थे; परन्तु एक भक्त को मन में प्रश्न पैदा हुआ कि मुनिराज तो स्वयं पंच परमेष्ठी में शामिल हैं। अतः वे तो स्वयं पूज्य बन गये हैं। उन्हें तो पूजन करने की जरूरत ही नहीं है। पूजन करना तो श्रावकों के षट् आवश्यक कर्मों में ही प्रथम कर्तव्य है। आगम में भी उल्लेख है कि ह

१. पूजन से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें, लेखक लोकप्रिय कृति 'इन भावों का फल क्या होगा' अध्याय-१

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः ।

दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने-दिने ॥<sup>१</sup>

फिर मुनि संघ पूजन में सम्मलित क्यों हो रहा है?

ह ह ह ह

पर्व के प्रथम दिन की भाँति दूसरे दिन भी सूर्योदय के साथ ही सामूहिक प्रक्षाल-पूजन प्रारंभ हुई तथा ठीक आठ बजे मुनिसंघ भी पूजन में सम्मलित हुआ। आचार्यश्री ने नित्य नियम पूजन के पूरा होते ही तथा अगली पूजन को प्रारंभ करने के पहले भक्तों का ध्यान आकर्षित करते हुए आदेश दिया ह “अब अगली पूजन प्रारंभ करने से पहले मुनि श्री समन्तभद्रजी पूजन के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बातें बतायेंगे। शेष नैमित्तिक पूजनें प्रवचन के बाद होंगी।

स्थानीय परम्परा के विरुद्ध आचार्यश्री का आदेश सुनकर सब भगत सन्न रह गये, पर किसी की कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई।

समाज के मुखिया ने साहस बटोरा और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया ह “आचार्यश्री पूजन के बीच में प्रवचन? यहाँ तो आजतक कभी ऐसा हुआ नहीं।

आश्वस्त करते हुए आचार्यश्री ने कहा ह “हमारे होते हुए तुम चिन्ता क्यों करते हो? कुछ अनर्थ नहीं होगा? घबराओ मत। हम बैठे हैं न! पूजन के बीच में पूजन की ही जानकारी देने से कुछ अनर्थ-मनर्थ नहीं होता, ये तो आप लोगों का कोरा भ्रम है।

हो सकता है कभी किसी ने किसी प्रसंगवश पूजन के बीच में विकथा आदि करने से रोक दिया हो। पूजन के साथ पूजन की जयमाला का अर्थ करने की परम्परा तो पुरानी है। इसमें तो ज्ञान की वृद्धि ही होगी। अनर्थ क्या होगा, अनर्थ होने का भ्रम भंग जरूर हो जायेगा, जो होना ही चाहिए।

तुम लोग जिन लौकिक कामनाओं के लक्ष्य से पूजा पाठ करते हो, अनर्थ तो उससे होता है। तुम पूजा में अपने दुःख-दर्द सुनाने के और उन्हें दूर करने की प्रार्थना करने के सिवाय और करते ही क्या हो?

तुम्हारा धर्म तो भगवान की पूजा-पाठ करने और मुनियों को आहार दे देने तक ही सीमित है। तुम तो पूजाओं में भगवान को मात्र अपना दुखोना ही सुनाते हो, उनकी तात्विक बातें सुनते ही कहाँ हो?

इन्हीं सब बातों को मुनिश्री अब समझायेंगे, उन्हें ध्यान से सुनो। आज मुनिसंघ इसीलिए यहाँ आया हैं? सब लोग शान्ति से बैठें और मुनिश्री को सुनें?

मन में तो ऐसे विकल्प बहुतों को हुए थे। लगभग सभी आशंकित थे, भयभीत थे कि कुछ अनर्थ न हो जाय। पूजा के बीच में विघ्न जो पड़ गया है; पर मुनिसंघ के समक्ष मुँह खोलने की हिम्मत किसी की नहीं हुई।

मुनिश्री को उस दुःसाहसी मुखिया के प्रति करुणा तो बहुत आई पर धैर्य धारण कर आचार्यश्री ने उससे अधिक कुछ न कहकर मुनिश्री का प्रवचन प्रारंभ कराया।

ह ह ह ह

मुनिश्री ने एक बुढ़िया की कथा से अपना प्रवचन प्रारंभ किया। उन्होंने कहा ह “एक थी बुढ़िया, अन्य बूढ़ों की तरह उसे बुढ़ापे की वे बीमारियाँ तो थीं ही, जिनका कोई इलाज नहीं हो सकता था; परन्तु वह कुछ दिनों से बुखार, खाँसी, सरदर्द, कमरदर्द, हाथ-पैरों की पीड़ा और छीकें आने व नाक से पानी के टपकने से बहुत परेशान थी।

कुछ दिन तक तो वह उन कष्टों को सहती रही; किन्तु जब उसका धैर्य टूटा तो उसने ठान ही लिया कि यद्यपि डॉक्टर कभी पूरी बात सुनता नहीं है; पर मैं आज अपनी पूरी व्यथा-कथा सुनाकर ही रहूँगी।

डॉक्टर बहुत लोकप्रिय था, बुद्धिमान और अनुभवी भी बहुत था। अपने व्यवसाय में वह नम्बर एक पर था। इसकारण उसके यहाँ मरीजों की

लम्बी लाईन लगती थी। वह मरीजों का इलाज भी दिल से करता था, पैसे कमाने से कहीं अधिक परोपकार की भावना उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

प्रथम तो वह बुढ़िया संघर्ष करके लाईन तोड़कर डॉक्टर के बिना बुलाये ही डॉक्टर के पास पहुँच गई। इस कारण डॉक्टर को क्रोध तो बहुत आया; परन्तु उसे देखकर डॉक्टर को अपनी माँ की याद आ गई, जो कुछ दिन पहले ही चल बसी थी। अतः डॉक्टर ने उस बुढ़िया में अपनी बूढ़ी माँ का रूप देखकर उसे प्रेमपूर्वक बिठाया और पूछा ह “बोल अम्मा! तुझे क्या तकलीफ है?” अम्मा ने अपनी व्यथा-कथा कहना प्रारंभ किया तो बोलती ही गई, बोलती ही गई; जबकि डॉक्टर ने उसकी नवज देखते ही समझ लिया था कि ह्व इसे और कुछ नहीं है, केवल मौसम का बुखार है। इसी के कारण ये सब तकलीफें हैं।

डॉक्टर ने कहा ह “अम्मा! मैं समझ गया?”

बुढ़िया बोली ह “बेटा? तू बिना कुछ कहे ही सब कैसे समझ गया? अभी तू कुछ नहीं समझा। अभी मैंने बताया ही क्या है। सुन! मेरे सिर में ..... पेट में ..... पैरों में ..... कमर में भयंकर दर्द है असह्यवेदना है। “इस तरह बिना सांस लिए एक ही बात को बार-बार सुनाये ही जा रही थी। तब डॉक्टर ने कहा ह “मैं तेरे मुँह से भी ये सब बातें अनेक बार सुन चुका हूँ। माँ मैं सब समझ गया। अब तू ही बोलती रहेगी कि कुछ मेरी भी सुनेगी? मेरी बात सुने बिना और दवा खाये बिना तेरा दर्द कैसे दूर होगा?”

इसी बीच उस बूढ़ी अम्मा को याद आया कि अरे! दूध तो सिगड़ी पर ही छोड़ आयी हूँ, वह उफन गया होगा, थोड़ी देर और हुई तो सब जल जायेगा।

फिर क्या था अम्मा ने कहा ह “बेटा! अभी मेरे पास तुम्हारी बात सुनने का समय नहीं है, मैं कल आऊँगी। फिर अपनी बाकी बातें बताऊँगी और .....।”

डॉक्टर ने माथा ठोक लिया ह “अभी तक पाँच मरीज निपटते। अब ये कल फिर आयेगी और इसी तरह अपना दुखोना फिर रोयेगी।”

डॉक्टर कुछ कहते; उसके पहले ही वह उठकर चल दी।

दूसरे दिन फिर आ धमकी और उसी प्रकार लाईन तोड़कर फिर अन्दर पहुँच गई और लगी अपनी व्यथा कथा सुनाने।

ऐसा एक दो दिन नहीं, जब कई दिन ऐसा हुआ तो डॉक्टर ने उसके हाथ जोड़े, पैर पड़े और कम्पोउंडर से कहा ह “इसे बाहर बिठाओ और जब एक भी मरीज न रहे तब अन्दर आने देना।”

ह्व ह्व ह्व ह्व

मुनिश्री ने इस कथा के माध्यम से कहा ह “ये भक्त लोग भी उस बुढ़िया से किंचित् भी कम नहीं हैं। भगवान के सामने आदिनाथ भगवान की पूजा की जयमाला में रोज-रोज एक ही बात कहते हैं कि ह्व

“ऊँट-बलद-भैंसा भयो, तापै लदियो भार अपार हो।

चलत-चलत जँह गिर पड़्यो, पापी दे सोटन की मार हो॥”

जब भगवान आदिनाथ उस भक्त की वह दुःखद कथा सुनकर उसको उन दुःखों से बचने का उपाय बताने की बात करते हैं, तभी उस भक्त को दुकान के ग्राहकों की याद आ जाती, माता-बहिनों को सिगड़ी पर रखे दूध की याद आ जाती और न जाने क्या-क्या विकल्प आ जाते हैं और जल्दी-जल्दी पूजा में अपने दुःखों का रोना रोकर चल देता है।

यह बात एक दो दिन की नहीं है, बल्कि ये भक्त वर्षों से यही रोना रोते आ रहे हैं और भगवान के बताये उपाय करना तो दूर उनके बताये उपाय सुनते भी नहीं हैं तो इन भक्तों के दुःख दूर कैसे होंगे?”

मुनिश्री ने उसी से एक प्रश्न किया, जिसने मुनिराज को पूजन के बीच में प्रवचन करने का दबी जवान से विरोध किया था।

मुनिश्री ने पूछा! “बताओ मुखिया महोदय! पूजन और प्रवचन में क्या अन्तर है?”

प्रश्न सुनकर सब सकपका गये, अवाक रह गये। मुखिया की बोलती भी बंद थी।

तब मुनि श्री ने कहा हूँ “अरे भाई! पूजन में हम भगवान से कुछ कहते हैं? और प्रवचन में जिनवाणी के माध्यम से भगवान हम से कुछ कहते हैं। यही तो दोनों में मूल अन्तर है। तथा हूँ

पूजन में हम प्रतिदिन उसी बात को दुहराते हैं और प्रवचन में हमें नित्य नई-नई बातें सुनने-समझने का मौका मिलता है।

पूजन में हम भगवान से ऐसा क्या कहते जो भगवान को पहले से पता नहीं है। अरे! वे तो सर्वज्ञ हैं, तुम जो भी कहना चाहते हो, वे उसे पहले से ही जानते हैं।

एक बात और है, वे भले ही तुम्हारे दिल की सब बातें जानते हैं, पर करते कुछ नहीं हैं; क्योंकि वे एक तो वीतरागी हो गये हैं। दूसरे, वस्तु स्वातंत्र्य के सिद्धान्त के अनुसार अनंतबल के धनी होते हुए भी वे पर में कुछ कर ही नहीं सकते, करते ही नहीं हैं। अतः उनसे कहने से भी क्या होगा?

अपना दिल हल्का करने के लिए और भक्ति के वश होकर भक्तों को कुछ कहना पड़े तो भले कहें; परन्तु अपनी कहो कम और उनकी सुनो अधिक। उन्होंने जिनवाणी में जो दुःख दूर करने के उपाय बताये हैं, उन्हें स्वयं पढ़ो गुरुओं से सुनो। इसी में भगवान की विनय हैं, भक्ति है। भगवान की वाणी सुनने से अधिक भगवान का बहुमान और क्या होगा?

जरा सोचो और कल से जितनी भी पूजायें करो; समझ-समझ कर करो तथा प्रवचन को भी पूजन से कम मत समझो, बल्कि पूजन से अधिक महत्व प्रवचन का है, इसे गाँठ बाँध कर रखो।” ॐ नमः।

●



## पहले मुनि या मुनीम

स्वयं को मुनियों का अनन्य भक्त मानने वाले पण्डित पीताम्बर शास्त्रीय विद्वान् तो नहीं हैं, परन्तु स्थानीय प्रवचनकार होने से उन्हें सब पण्डितजी कहने लगे।

पण्डित पीताम्बर को अध्यात्म शास्त्रों का गहरा अध्ययन और तत्त्व की सूक्ष्म पकड़ भी अभी नहीं है, पर तत्त्वज्ञान से ऐसा विरोध भी नहीं है कि जिससे तत्त्व को सुनना समझना ही ना चाहें, अध्यात्म को जानने की थोड़ी जिज्ञासा भी है; परन्तु पण्डितजी मुनियों के प्रति विशेष आस्थावान हैं। अतः जब भी मुनियों के या आर्यिकाओं के शुभागमन का प्रसंग आता है तो वे भावविभोर होकर मुनि भक्ति की भावना व्यक्त करने से नहीं चूकते।

ठीक भी हैं, जिसको सन्मार्ग में लाने में जो निमित्त बना हो, उसके प्रति बहुमान आना स्वाभाविक ही है और कृतज्ञता ज्ञापनार्थ उनके प्रति यथायोग्य आदर का भाव भी आता ही है, जो आना भी चाहिए।

पण्डित पीताम्बर को किशोर अवस्था में अनेक दुर्व्यसनों ने घेर लिया था। एक चातुर्मास में मुनि संघ के सम्पर्क में आने से मुनिसंघ द्वारा दिये गये सदाचार के उपदेशों से धीरे-धीरे उनके वे दुर्व्यसन तो छूट ही गये, मुनिसंघ द्वारा नियमित स्वाध्याय की प्रतिज्ञा कराने से उस प्रतिज्ञा के निर्वाह हेतु वे नर-नारियों को सामूहिक स्वाध्याय भी कराने लगे थे। ऐसा करने से उन्हें समाज में सम्मान भी मिलने लगा। इसी कारण विशेष अवसरों पर समाज द्वारा उन्हें अग्रिम पंक्ति में रखा जाने लगा।



आर्थिका संघ के शुभागमन पर सभी समाज ने पलक पाँवड़े बिछाकर संघ का स्वागत किया। सम्मान समारोह में पण्डित पीताम्बरजी ने अपने व्याख्यान में मुनियों एवं आर्थिकाओं के तप-त्याग को महिमा मण्डित करते हुए कहा ह “मुनि हुए बिना मुक्ति नहीं। स्त्री-पर्याय में भी जितना संभव हो सकता है, उसमें आर्थिका का पद सर्वोत्कृष्ट है।

पीताम्बरजी ने आगे कहा ह “यद्यपि उपसर्ग और परीषह मुनियों के मूलगुणों में नहीं है, परन्तु उत्तरगुणों में इनका प्रमुख स्थान है, जिन्हें सहना और जीतना अति कठिन होते हुए भी उपसर्गों को सहते हुए मुनि मन को मलिन नहीं करते और परीषहों को भी सहजता से जीत लेते हैं।”

वस्तुतः प्रथमानुयोग और चरणानुयोग ही पीताम्बरजी के प्रिय विषय हैं; क्योंकि प्रथमानुयोग की वैराग्यवर्द्धक कथायें और चरणानुयोग की चर्चा सुनकर ही उनके जीवन में परिवर्तन आया था। इस कारण वे अपनी शास्त्र सभा में इन्हें ही सुनाया करते हैं। वाणी में माधुर्य और कंठ सुरीला होने से बीच-बीच में वैराग्यवर्द्धक भजन सुनाकर अपने प्रवचनों को रोचक व प्रभावी बनाने की कला में पण्डितजी निपुण हैं।

ह ह ह ह

दूसरे दिन जब विदुषीरत्न अध्यात्म रसिक आर्थिका माताजी का प्रवचन हुआ तो सर्व प्रथम तो उन्होंने मुनिधर्म की महिमा मण्डित करने के लिए पीताम्बरजी को बधाई दी, परन्तु अगले वाक्य में ही जब आर्थिका माताजी ने पण्डितजी को भाषण में संशोधन करने की सलाह देते हुए कहा कि ह “पण्डितजी! मुनि बनने के पहले ऐसा मुनीम बनना अनिवार्य है। जो तत्त्वों का लेखा-जोखा रखता है।

आर्थिका माता के उद्बोधन में मुनि से पहले मुनीम बनने की बात सुनकर पीताम्बरजी अवाक् रह गये।

उन्होंने साहस बटोरकर आर्थिका माताजी से पूछा ह “मुनि से पहले मुनीम बनने से आपका क्या तात्पर्य है? मैं कुछ समझा नहीं। कौनसे तत्त्वों का हिसाब रखना पड़ता है, थोड़ा विस्तार से बतायें, ताकि मैं समझ सकूँ।”

माताजी ने पण्डितजी का समाधान करते हुए समझाया ह “यहाँ अध्यात्म में मुनीम का अर्थ किसी लौकिक सेठ की रोकड़ बही लिखने और रुपयों के लेन-देन का हिसाब-किताब करने की नौकरी करना नहीं है; अपितु अपने आत्मा के लक्ष्य से बने लक्षपति चिन्मय सेठ की सेवा में रहकर द्रव्य-गुण-पर्याय और जीवादि सात तत्त्वों के खातों का सही लेखा-जोखा रखने से हैं।

एक तत्त्व को दूसरे में न मिलाकर जीव को ही जीव जाने, शरीरादि अजीव को जीव न माने, आस्रव तत्त्व का आय-व्यय आस्रव के खाते में ही जमा-खर्च हो एवं संवर-निर्जरा तत्त्व द्वारा हुए कर्मों के व्यय का हिसाब उन्हीं के खर्च खाते में लिखा जावे। पुण्यास्रव एवं पुण्यबंध कर्म हैं, इनकी आय को धर्म के खाते में भूलकर भी न जमा किया जावे। तत्त्वों के इस लेखे-जोखे में निपुण होना ही अध्यात्म की मुनीमी है। इस मुनीमी से ही मुनि बनने की योग्यता आती है।

देखो, जैसे लौकिक मुनीमों में तीन गुण होते हैं। प्रथम तो वह लेन-देन का सही हिसाब रखने में कुशल एवं ईमानदार होता है। दूसरे, वह सेठ की सम्पत्ति का स्वयं स्वामी नहीं बनता; तीसरे, सेठ के मुनाफे-घाटे में हर्ष-विषाद करता दिखाई देता है, पर दिल से सुखी-दुःखी नहीं होता; क्योंकि श्रद्धा में तो सेठ के माल को पराया ही मानता है। ऐसा मुनीम सेठ का विश्वास प्राप्त कर एवं व्यापार में कुशलता प्राप्त कर एक दिन स्वयं सेठ बन जाता है।

ठीक इसी तरह मोक्षमार्ग में मुनि बनने से पहले सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की तथा अपने-पराये की यथार्थ पहचान हो, स्व-पर भेद विज्ञान हो, सातों तत्त्वों में हेय-उपादेय-ज्ञेय का विवेक हो, वस्तुस्वातंत्र्य एवं सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की रुचि हो। मुनिधर्म अंगीकार करने के पहले ऐसा हिसाब-किताब रखने वाला मोक्षमार्ग का मुनीम होता है। ऐसा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की शरण में रहने वाला मुनीम आत्म साधना का व्यापार करते-करते एक दिन स्वयं मुनि बन जाता है।

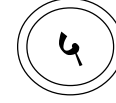
ह ह ह ह

आर्यिका माताजी का अध्यात्म रस से ओत-प्रोत तत्त्वोपदेश सुनकर श्रोताओं को जो **मुनीम से मुनि बनने** का मार्गदर्शन मिला, उससे सभी श्रोता कृतार्थ हो गये।

पुण्य-पाप के फल के अनुसार सुख-दुःख के पांसे पलटते ही रहते हैं। जहाँ एक ओर पापों के फल में दुर्भाग्य का दैत्य धक्का देकर ओंधे मुँह गिरा देता है, वहीं दूसरी ओर पुण्य के फल में सौभाग्य स्वयं साकार रूप धर कर संभाल भी लेता है; परन्तु यह हम पर निर्भर करता है कि हम किसे आमंत्रण दें और उससे प्राप्त सामग्री का कहाँ/कैसे उपयोग करें।

यदि हम पुण्य को आमंत्रण देना चाहते हैं तो हमें सत्कर्म ही करने होंगे। हमारे द्वारा यदि दूसरों को किसी भी कारण कोई पीड़ा पहुँचती है तो इससे बड़ा दुनियाँ में अन्य कोई दुष्कर्म नहीं है और दूसरे जीवों की रक्षा करने से, उनका भला करने से बढ़कर कोई पुण्य का कार्य नहीं है।

ह ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-८४



## मान से मुक्ति की ओर

“माया<sup>1</sup> तेरे तीन नाम, परसा-परसू-परस राम।” कहावत को चरितार्थ करते हुए जिनुआ बनिया को जिनुआ से जिन्नूजी और जिन्नूजी से जिनचन्द्र बने अभी चन्द दिन ही हुए थे, परन्तु वह बहुत जल्दी अपनी जिनुआ वाली औकात (हैसियत) भूल गया था।

जब सारा गाँव उसे जिनुआ कहकर पुकारता था, गाँव में कोई इज्जत नहीं थी। घर में दो चना और दो धना भी नहीं थे। भूखों मरता था, भरपेट खाने को भी नहीं मिलता था। नंगे पैर गाँव के गलियारों में घूम-घूमकर चने-भूंगड़े बेचकर जैसे-तैसे रोजी-रोटी चलाता था।

पर “सबै दिन जात न एक समान” सिद्धान्त के अनुसार उसके भाग्य ने भी पलटी मारी, उसके दिन फिर गये और वह जिनुआ से जिन्नूजी बन गया।

“सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति” ज्यों-ज्यों उसके पास सम्पत्ति बढ़ती गई, उसका कद ऊँचा होता गया, कद के साथ पद भी बढ़ता गया।

जो कलतक दुनिया की दृष्टि में भोला था, कुछ नहीं समझता था; समाज की नजरों में मूर्खों का सरदार दिखता था। अब वही समाजभूषण, जैनरत्न “सेठ जिनचन्द्र” कहलाने लगे थे।

यद्यपि अभी भी उसके पास अभिमान करने लायक कुछ भी नहीं था; परन्तु जिस भाँति वृक्षविहीन प्रदेश में एरण्ड का पौधा भी वृक्ष कहलाता है, उसी भाँति सेठ जिनचन्द्र की स्थिति थी।

एक रिश्तेदार सेठ की पूँजी के सहयोग से साहूकारी में गाँव में किसानों को तगड़े ब्याज पर रुपया देकर तथा खेतों में बोने को दिए गए बीज की डेढ़ गुनी वसूली से कुछ ही दिनों में वह उस जनपद का सेठ बन गया।

आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाने से उसने उस सुख-सुविधाविहीन छोटे से गाँव में अपने घर में कुछ सुविधायें जुटा ली थीं। जैसे कि पानी के लिए आँगन में नलकूप लगा लिया, नहाने-धोने, नित्यकर्मों से निबटने के लिए स्नानघर आदि बनवा लिया। प्रकाश के लिए जनरेटर, गैसबत्ती की व्यवस्था कर ली, कच्चे मकान की मरम्मत करा ली, सवारी के लिए घोड़ा-गाड़ी रख ली।

इसप्रकार उसने गाँव के गरीब व्यक्तियों से कुछ अलग दिखने के साधन क्या जुटा लिए और बन गये 'अंधों में काने राजा'। फिर क्या था अब तो उसकी चाल ही बदल गई। सीधा चलता ही नहीं, उसका बातचीत का तरीका ही बदल गया। वह किसी से सीधे मुँह बात ही नहीं करता। जैसे ह्व शतरंज के खेल में जब प्यादा प्यादे से वजीर बन जाता है तो उसकी चाल टेढ़ी हो जाती है, उसीतरह वह जिनुआ से जिनचन्द्र बनते ही मानो उसके पंख लग गये और आकाश में उड़ने लगा।

ह वह ह वह ह वह बिचारा यह नहीं जानता था कि "यह सब तो पुण्य-पाप का खेल है। रोड़ पर पैदल रास्ता नापनेवालों को करोड़पति बनकर कार में दौड़ने में यदि देर नहीं लगती तो करोड़पति से पुनः रोड़ पर आ जाने में भी देर नहीं लगती। शास्त्र इस बात के साक्षी हैं, शास्त्रों में लिखा है कि जो जीव एक क्षण पहले तक स्वर्गों के सुख भोगता है, सहस्रों देवांगनाओं सहित नन्दनवन के सैर-सपाटे करता हुआ आनन्दित होता है, वही अगले क्षण आयु पूरी होने पर ह्व 'तंहतै चय थावर तन धरै' इस आगम प्रमाण के अनुसार एक क्षण में एक इन्द्रिय जीव की योनि में चला जाता है। जो अभी चक्रवर्ती के भोगों के सुख भोग रहा है, वही मरकर सातवें नरक में भी जा सकता है।

अतः यदि कोई थोड़ा भी समझदार हो, विवेकी हो तो वह क्षणिक अनुकूल संयोग में अपनी औकात (हैसियत) को नहीं भूलता। अपनी भूत और वर्तमान पर्याय की कमजोरी और त्रिकालीस्वभाव की सामर्थ्य ह्व दोनों को भलीभाँति जानता है। अतः उसे सेठ जिनचन्द्र की भाँति संयोगों में अभिमान नहीं होता; परन्तु ऐसी समझ सेठ जिनचन्द्र में नहीं थी।

ह ह ह यद्यपि सेठ जिनचन्द्र पिता के जमाने से चले आ रहे परम्परागत प्रक्षाल-पूजन और प्रवचन के नियम का निर्वाह बराबर करता था; भले दो-चार श्रोता ही क्यों न हों; पर वह प्रवचन करता अवश्य था; क्योंकि प्रवचन भी उसके मान-पोषण का एक साधन था। मौका मिलते ही वह उस अभिमान के भाव को व्यक्त किये बिना भी नहीं रहता था।

वह कहता ह्व "भैया ! क्या बताऊँ समाज की दशा ! यदि मैं प्रक्षाल, पूजा और (प्रवचन) न करूँ तो विचारे भगवान दो-दो बजे तक बिना प्रक्षाल-पूजा के ही बैठे रहेंगे; क्योंकि साप्ताहिक बारीवालों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। उन्हें तो जब टाइम मिलेगा, तब आयेंगे और वेगार<sup>१</sup> जैसी टाल कर चले जायेंगे। एक मैं ही हूँ, जो सबेरे समय पर प्रक्षाल-पूजा हो जाती है। यदा-कदा जब मैं नहीं होता, बाहर चला जाता, तब ऐसा ही होता है।

मनुष्य तीन श्रेणी के होते हैं ह्व १. उत्तम २. मध्यम और ३. अधम।

"**उत्तम मनुष्य** वह है, जो दूसरों की गलती का दुष्परिणाम देखकर स्वयं सावधान हो जाय। **मध्यम पुरुष** वह है जो एक बार गलती का दण्ड भुगतकर पुनः गलती न करे तथा **अधम पुरुष** वह है, जो गलती पर गलती करता रहे; गलतियों का दण्ड भुगतता रहे; फिर भी सुधरे नहीं, चेते नहीं।"

१. मजबूरी में अरुचिपूर्वक किया गया काम

सेठ जिनदत्त तीसरी श्रेणी का व्यक्ति था। क्या आप जानते हैं कि कुत्ते में एक गुण और तीन दुर्गुण होते हैं। यद्यपि कुत्ता स्वामीभक्त होता है, यह उसका अद्वितीय गुण है। कुत्ते जैसा स्वामी भक्त कोई नहीं होता; पर उसमें तीन दुर्गुण भी होते हैं ह

प्रथम ह कुत्ता जबतक पिटता है, तभीतक काई-काई करता है, पिटना बंद होते ही फिर वही गलती करता है, जिसके कारण वह अभी-अभी पिटा है। द्वितीय ह कुत्ते की पूँछ 12 वर्ष तक भी पुंगी में क्यों न डाली जाये, जब भी निकलेगी टेढ़ी ही निकलेगी। तृतीय ह कुत्ते में एक कमी यह भी होती है कि वह बिना प्रयोजन भी भौंकता रहता है और दूसरे कुत्तों को देखकर तो वह जरूर ही भौंकता है।

ये तीनों दुर्गुण सेठ जिनचन्द्र में भी थे। वह जिनुआ से जिनचन्द्र बनते ही जिनुआ की अवस्था में हुई दुर्दशा को भूल गया था और फिर उन्हीं गलतियों को करने लगा, जिनके कारण उसने लम्बे (दीर्घ) काल तक दरिद्रता का दुख भोगा था। पैसा बढ़ते ही पुनः अभिमान के शिखर पर चढ़ गया; जबकि वह स्वयं पूजन में प्रतिदिन बोला करता था कि ह

“मान महाविषरूप करहि नीचगति जगत में।

कोमल सुधा अनूप सुख पावै प्रानी सदा ॥”

फिर भी वह अपनी आदत से मजबूर था।

फुरसत के समय घर के बाहर द्वार के सामनेवाले चबूतरे पर आकर बैठ जाता। अपने बड़बोले स्वभाव और बिना प्रयोजन अधिक बोलने की आदत से वह कुछ न कुछ बोलता ही रहता। उसे बैठा देख कुछ चाटुकार खुशामदी प्रकृति के ठलुआ भैया भी आ बैठते; क्योंकि एक तो उन्हें कुछ काम नहीं होता। दूसरे, सेठ के साथ बैठकर उनका भी समय पास हो जाता। तीसरे, उन्हें सेठ को राजी रखकर अपना उल्लू सीधा करने का मौका मिलता। अतः वे सेठ की झूठी/सच्ची बातों की हाँ में हाँ मिलाया करते और सेठ के साथ नकली हँसी हँसा करते।

मेरा घर पास में ही था, उनकी ठहाकों की आवाज सुनकर मेरा मन भी उनकी खट्टी-मीठी बातें सुनने को मचलने लगता। मुझे भी घर में अकेले बैठे रहना अच्छा नहीं लगता, इसकारण मैं भी उनकी महफिल में शामिल होकर मूकदर्शक बना उनकी बातों से अपना मनोरंजन करता रहता।

बैठे हुए व्यक्तियों पर रौब जमाने हेतु सेठ जिनचन्द्र स्वयं के नकली बड़प्पन को प्रदर्शित करने और दूसरों की दरिद्रता व हीनता-दीनता को दर्शाते हुए, उजागर करते हुए कहने लगता ह “वे इन्दौरवाले बड़े धन्ना सेठ बने बैठे हैं, उस पंचकल्याणक में बड़ी शान से मेरे आमने-सामने सौधर्म इन्द्र की बोली लगाने खड़े हो गये। मैंने सीधे पचास हजार बोले तो उन्होंने आव देखा न ताव, सीना ताने मेरी बोली पर सीधे पाँच-पाँच हजार बढ़ाने लगे।

मैंने मन में कहा ह “ठीक है बेटा! तू भी आज मेरे सामने। मैंने आज भरी सभा में तेरी भी नाक न कटाई तो मेरा नाम जिनचन्द्र नहीं। एक खुशामदी बोला ह “सेठजी आपने सोचा तो अच्छा; परन्तु फिर आखिर में हुआ क्या?”

“होना क्या था, मैंने कोई कच्ची गोलियाँ थोड़े ही खेली हैं, जैसे-जैसे वह बढ़ता गया, मैं भी बढ़ता गया। दो लाख तक पहुँचते ही वह टाँय-टाँय फिस्स हो गया, हिम्मत हार गया, मुँह लटका कर बैठ गया।”

दूसरा पड़ोसी आश्चर्य प्रगट करते हुए बोला ह “तो आपने दो लाख में बोली ले ली!”

सेठ बोला ह “और नहीं तो क्या? मैंने ही ली। मेरे सामने और किसकी हिम्मत थी, जो मेरा सामना करता।”

तीसरा बोला ह “काम तो आपने बहुत अच्छा किया। इससे पूरे गाँव का नाम ऊँचा हुआ; परन्तु यदि बुरा न मानो तो एक बात पूँछू। डरते-डरते उसने प्रश्न किया।”

सेठ अकड़कर बोला ह “एक ही क्यों ? तू दो प्रश्न पूछ न ! प्रश्न पूछने में बुरा मानने की बात ही क्या है ?”

“वीतराग-विज्ञान पाठशालावाले कह रहे थे कि आपका पाठशाला का लिखाया चन्दा तीन साल से बाकी निकल रहा है। इसकारण पाठशाला के पण्डितजी को प्रतिमाह वेतन चुकाने में भारी कठिनाई होती है, यहाँ-वहाँ से माँगकर पूर्ति करनी पड़ती है। बेचारे पण्डितजी का दैनिक खर्चा वेतन से ही तो चलता है।” उन्होंने यह भी कहा कि ह “हम सेठ के घर के इसके लिए कई चक्कर काट चुके; पर उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगता।” क्या यह बात सही है ?

सेठ तुनक कर बोला ह “अरे भैया ! तुम बहुत भोले हो। तुम्हें तो पता ही है कि ये चन्दावाले आये दिन खड़े ही रहते हैं, कभी कोई तो कभी कोई।

चौथा बोला ह “हाँ, सो तो है आप दानवीर जो ठहरे ! जब आपको हजारों लोगों की उपस्थिति में पंचकल्याणक के मेले में ‘दानवीर’ उपाधि की घोषणा हुई तो हजारों लोगों ने सुना और दूसरे दिन लाखों लोगों ने पेपर में भी यही समाचार पढ़ा तो चन्दा लेनेवाले तो आयेंगे ही। आपके यहाँ नहीं आयेंगे तो और कहाँ जायेंगे ?”

सेठ ने कहा ह “हाँ, भैया यही सोचकर तो बोली बोलते हैं और चन्दा लिखा देते हैं; पर इसका मतलब यह तो नहीं कि वे साहूकार बनकर कर्ज वसूली की तरह तगादा करें। क्या हमने किसी का कर्ज लिया है, जो चिंता करें। बोली ही तो ली है, चन्दा ही तो लिखाया है, इसमें कौन से पाप का काम कर लिया ? जब होंगे तब दे देंगे। हमने तो तगादा करनेवालों से साफ-साफ कह दिया ह आइन्दा हमारे कोई भी तगादे का पत्र या फोन नहीं आना चाहिए, वरना हमसे बुरा भी कोई नहीं।”

पाँचवाँ बोला ह “सेठजी ! अभी तो आप कह रहे थे कि बेटे को शेयर में एक करोड़ मिला है, फिर पुराना लिखाया हुआ चन्दा चुका क्यों नहीं देते ?”

सेठ ने आँख बदलते हुए कहा ह “हाँ, हाँ मिला है, पर ऐसे लुटाने को थोड़े ही मिला है। घर की जरूरतें भी तो होती हैं। कल ही तो उसने पचास लाख का नया बंगला लिया है। पच्चीस लाख की नई मरसरीजड गाड़ी बुक कराई है। दस लाख के बहू के लिए हीरों के गहने बनवायें हैं, मेरी 50वीं वर्षगाँठ को मनाने का लगभग 5 लाख का बजट है, उसमें सिनेतारिका ऐश्वर्याराय का नाइट शो होगा। दो लाख तो वही ले जायेगी। दैनिक खर्च में पोते-पोतियों को 100-200 रुपये रोज का तो जेब खर्च ही है। बेटे के बाररूम की महफिल का खर्च अलग। अब तुम्हीं सोचो ये जरूरी कामों की सोचें या पहले पुराना चन्दा-चिड्डा चुकायें, और दान पुण्य करें।

दान-पुण्य तो मात्र सामाजिक प्रतिष्ठा की बातें हैं सो जब जैसा मौका आता है, बोल-बाल देते हैं।

हाँ, अपने नाम का एक चैरिटेबल ट्रस्ट बनाने का विचार जरूर है। उसे टेक्स फ्री कराने की कोशिश करेंगे और उसके द्वारा विधवा सहायता और कन्याशाला चलाने का काम करेंगे।”

आपस में कानाफूसी करते हुए वहाँ बैठे लोगों ने टिप्पणी की ह “सेठ है तो बड़ा दूरदर्शी ! सेठानी बीमार रहने लगीं हैं न ! उससे अब चलते-फिरते, उठते-बैठते भी तो नहीं बनता, इसलिए सेठ विधवा सहायता और कन्याशाला के बहाने औरतों का मेला लगायेगा और अधिक कुछ नहीं तो उन विधवाओं और शिक्षिकाओं को घूर-घूरकर अपनी आँखे ही सेंक लिया करेगा।”

कोई अपने मनोविकारों को कितना भी छिपाये, पर चेहरे की आकृति हृदय की बात कह ही देती है। खोटी नियत जाहिर हुए बिना नहीं रहती और खोटी नियत का खोटा नतीजा भी सामने आ ही जाता है। इसीकारण तो पास बैठे लोगों ने सेठ की खोटी नियत को भांप लिया था।

एक दिन वह सेठ घर के बाहर उसी चबूतरे पर बैठा अपने पूर्व परिचित चाटुकारों और खुशामद करनेवालों के बीच बैठा उन पर अपना रौब जमाने के लिए लम्बी-लम्बी छोड़ रहा था। लाखों-करोड़ों के बड़े-बड़े व्यापार करने एवं उसमें मुनाफा मिलने की बातें कर रहा था। संयोग से दो-तीन अपरिचित व्यक्ति भी वहाँ आ बैठे, जिनकी ओर उसका ध्यान नहीं गया।

उसकी ऊँची-ऊँची बातें सुनकर उन अपरिचितों के मन में लोभ आ गया। उन्होंने सोचा हूँ “यह तो मोटा मुर्गा है, यदि यह अपनी पकड़ में आ गया तो अपना जन्मभर का दलदर दूर हो जायेगा। फिर रोज-रोज अपनी जान को जोखिम में डालने की जरूरत ही नहीं रहेगी।”

फिर देर किस बात की थी; उन्होंने वहीं योजना बना डाली। कल ही प्रातः 5 बजे नेशनल पार्क में घूमने आनेवाले इस सेठ के बेटे का अपहरण कर लिया जाय और एक करोड़ फिरौती में इससे वसूल किये जायें।

सुनियोजित योजना के अनुसार सेठ के बेटे जिनेश्वर का अपहरण हो गया और फोन पर सेठ को यह धमकी दे दी गई कि “यदि 24 घंटों में एक करोड़ की फिरौती निर्धारित स्थान पर लेकर नहीं आया तो बेटा को जान से मार दिया जायेगा। यदि पुलिस को सूचित किया तो तुम्हारी बीबी भी विधवा हो जायेगी।”

सेठ जिनचन्द्र ने ज्यों ही समाचार सुना तत्काल उसके सीने में दर्द हो गया, हल्का-सा हार्ट-अटैक हो गया। पहले तो वह सीना दबाकर वहीं बैठ गया; फिर तत्काल हिम्मत करके स्वयं को संभालते हुए वह अपने किए पापों का पश्चाताप करने लगा।

अब उसकी समझ में सबकुछ आ गया था। वह सोचता है हूँ “न मैं अभिमान के पोषण के लिए दूसरों के सामने अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करता और न यह नौबत आती। मैंने स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी

पटकी है, अन्यथा किसे पता था कि मेरे पास क्या है? कितना है? मेरे ही बेटे का अपहरण क्यों हुआ? औरों का क्यों नहीं?

वस्तुतः मैंने ही अपने वैभव के प्रदर्शन की लम्बी-लम्बी बातें करके इस मुसीबत को मोल ले लिया है, लुटेरों को आमंत्रित किया है।

न मैं उस दिन एक करोड़ की चर्चा करता और न ये घटना घटती।”

स्वयं बड़ा और दूसरों को छोटा, स्वयं को ऊँचा और दूसरों को नीचा दिखाने के चक्कर में यह झंझट सेठ के गले पड़ गई थी।”

नीतिकारों ने ठीक ही कहा है कि हूँ “जिस भाँति ज्ञानी जन निज निधि को एकान्त में ही भोगते हैं, उसीतरह व्यवहारी जनों को भी अपने मान पोषण के लिए अपने बाह्य वैभव का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।”

एक ही झटका लगने से सेठ को थोड़ी-थोड़ी अक्कल आ गई थी, अतः सोचता है कि गुरुजी ने ठीक ही कहा था कि हूँ “धन का संचय अन्याय से नहीं करना, क्योंकि अन्याय का पैसा कालान्तर में मूल पूँजी सहित नष्ट हो जाता है।”

दूसरी बात गुरुदेव ने यह भी कही थी कि हूँ “न्यायोपात्त धन अधिकतम छटवाँ और न्यूनतम दसवाँ भाग सत्कार्यों में, ज्ञानदान में, परोपकार में लगाना चाहिए तथा ‘तुरंत दान महाकल्याण’ जितना जो बोल दिया हो, देने की घोषणा कर दी हो, तत्काल दे देना चाहिए। क्या पता अपने परिणाम या परिस्थितियाँ कब विपरीत हो जायें और दिया हुआ दान न दे पायें।”

तीसरी बात हूँ “शक्ति से अधिक नहीं देना, अन्यथा आकुलता हो सकती है तथा लोभ के वश शक्ति भी नहीं छुपाना।”

चौथी अन्तिम बात गुरुदेव ने यही कही थी कि “दान देकर उसके फल की वांछा-कांछा नहीं करना, बदले की अपेक्षा नहीं रखना।”

अपनी आलोचना और प्रायश्चित्त करते हुए सेठ कहता है कि “मैंने विवेक शून्य होकर उपर्युक्त चारों बातों का ध्यान नहीं रखा। इसकारण यह

संकट मेरे ऊपर आया है। अतः मैं संकल्प करता हूँ कि पुण्योदय से प्राप्त धन विषय-कषाय की पूर्ति और दुर्व्यसनों में बर्बाद नहीं करूँगा।

पर अभी क्या करूँ ? पुलिस का सहारा लेता हूँ तो पहले तो पुलिस की ही पूजा करनी पड़ेगी ? क्या पता पुलिस कितने रुपया माँगे ? माँगे या न माँगे; पर उसे सक्रिय करने के लिए कुछ प्रलोभन देना तो पड़ेगा ही।”

सेठ यह सोच ही रहा था कि फोन की पुनः घंटी बजी, फोन उठाया तो कानों में आवाज आई ह “सेठ क्या सोच रहे हो ? ध्यान रखना यदि पुलिस का सहारा लिया तो बेटे की लाश मिलेगी। हमारा कुछ भी हो, पर तुम्हें बेटे से हाथ धोना पड़ेंगे।”

यह समाचार सुनकर सेठ किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसे चक्कर आ गया। सीने में दर्द हुआ, फिर सीना दबाकर बैठ गया। सोचने लगा ह “गुरुजी ने ठीक ही कहा था कि यह सब पुण्य-पाप का खेल है। अब पांसा पलट गया, फिर पाप का उदय आ गया। मैं पैसे को पाकर विवेकशून्य हो गया था। अब जो कुछ हुआ सो हुआ। सबसे पहले एक करोड़ का इन्तजाम कर बेटे को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।”

सेठ ने 50 लाख में कोठी बेची। बहू के जेवरात और गाड़ी आदि सबकुछ बेचकर पैसे की व्यवस्था की। थैली में भरकर फोन पर बताये ठिकाने की ओर जा रहा था कि कुछ गुंडे पीछे लग गये और रास्ते में वे रुपया सेठ से छीन कर भाग गये।

अब सेठ की दशा दयनीय हो गई। वह आत्मघात की सोच ही रहा था कि पुनः मोबाइल की घंटी बजी ह “सेठ मरने से दुख से मुक्ति नहीं मिलेगी। कोई बात नहीं चिन्ता मत करो...। तुम्हारे रुपया हमें मिल गये। तुमसे पैसे छीननेवाले हमारे ही आदमी थे। तुम यदि हमारे ठिकाने तक आते तो तुम्हें और हमें दोनों को पुलिस पकड़ लेती, क्योंकि उस ठिकाने

को पुलिस ने पहले से ही घेर रखा था। तुम चिन्ता न करो तुम्हारा बेटा कल तुम्हारे घर पहुँच जायेगा।”

आतंकवादी डाकुओं से मुक्त हुए जिनचन्द्र के बेटा ने बाप के कड़वे-मीठे अनुभवों को सीखकर उत्तम श्रेणी का व्यक्ति बन कर वह खोटी राह ही नहीं अपनाई, जिसमें कांटे ही कांटे थे।

सेठ से अब न रोते बनता था और न हँसते बन रहा था। जहाँ बेटा के सकुशल लौटने का बहुत हर्ष था, वहीं सर्वस्व समाप्त होकर पुनः सड़क पर आ जाने, करोड़पति से रोड़पति बन जाने का दुःख भी कम नहीं था।

यह सब पुण्य-पाप का विचित्र खेल 12 वर्ष की समयावधि में ही देखकर सेठ संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया। उसे ऐसा वैराग्य आया कि उस घर-परिवार से मुँह मोड़कर पुनः करोड़पति बनने का सपना-विकल्प छोड़कर पुण्य-पाप से पार आत्मा के उस अनन्त वैभव को प्राप्त करने के लिए चल पड़ा, जिसका कभी अन्त नहीं आता, जो कभी नष्ट नहीं होता। ●

जिसप्रकार सूर्य की विकेंद्रित किरणें जब लेंस के द्वारा केन्द्रित कर ली जाती हैं तो उससे भोजन तो पक ही जाता है, सोलर आदि से पानी का टैंक भी गरम हो जाता है। उसीप्रकार जो व्यक्ति बहिर्मुखी मानसिक वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाता है। पाँच इन्द्रियों एवं मन के द्वारा विकेंद्रित ज्ञान किरणों को अन्तर्मुखी पुरुषार्थ से आत्मा पर केन्द्रित करता है, उसका वह ध्यान धर्मध्यान है।

हृ ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-११४



## स्वर्ग वासहूँ नीको नाही

यह कौन नहीं जानता कि जवाहरातों की नगरी पिंगसिटी जयपुर का नाम अब भारत के उन गिने-चुने नगरों में अग्रगण्य हो गया है, जो सौंदर्यीकरण, स्वच्छता और नगर की सुव्यवस्थित बसावट आदि सभी दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ नगरों की श्रेणी में आते हैं।

परकोटे के भीतर पुरानी घनी-बस्ती की बड़ी-बड़ी हवेलियों में रहनेवाले श्रीमंत तो धीरे-धीरे परकोटे के बाहर आधुनिक ढंग से बसाये गये अनेक उपनगरों में बड़े-बड़े बंगले बनाकर एवं बहुमंजिला नवनिर्मित इमारतों में रहने ही लगे हैं, परकोटे के भीतर के भवनों एवं बाजारों को भी सुव्यवस्थित करने में नगर निगम एवं जयपुर विकास प्राधिकरण द्वारा कोई कसर नहीं रखी जा रही है।

ह ह ह

नगर प्रगतिशील हो, प्रदेश और देश भी दिनोंदिन प्रगति की ओर अग्रसर हों, यह अति उत्तम बात है। देश को प्रगतिशील देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होगी? हमें भी प्रसन्न होना ही चाहिए; परन्तु व्यक्तिगत रूप से देखें तो अपने जीवन का दूसरा पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जब हम दूसरे पहलू पर दृष्टिपात करते हैं तो इस भौतिक भोग प्रधान जीवन से हमारा चित्त विरक्त हो जाता है। हमें लगता है कि संयोग कितने ही सुन्दर क्यों न हों, जब हम ही न रहेंगे तो हमारे लिए सारे विश्व का वैभव भी तृण तुल्य ही है। मन में भाव आता है कि इस सबसे हमें क्या? हमारे जीवन का

तो एक पल का भरोसा नहीं कि यह जीवन का खेल कब खत्म हो जाए।

एक तो मानव जीवन स्वभावतः पानी के बुल-बुले के समान क्षणिक है, जो कभी भी पल भर में पंचभूत में विलीन हो सकता है। दूसरे, जानलेवा शारीरिक और मानसिक बीमारियाँ पल भर भी सुख-शान्ति से जीने नहीं देतीं। तीसरे, स्वार्थ और मिथ्या अभिमान से भरे मानवों के आपसी टकराव के कारण आतंकवाद के भूत का भय सिर पर सवार रहता है। मानो यमराज ही मुंहबायें खड़ा हो। इसतरह चारों ओर से मौत के बादल छाये हुए दिखते हैं। ऐसे में कौन निराकुलता से रह सकता है?

किस आतंकवादी के मस्तिष्क में कब पागलपन का दौरा आ जाये? या कब यह सनकी मानव एक जाम अधिक पीकर सनक जाये और एक ही पल में पूरा प्रगतिशील विश्व बर्बाद हो जाय, यह किसी को पता नहीं है। ऐसी विषम परिस्थितियों में ये भौतिक प्रगति हमारे किस काम की?

इस दुःखद संसार में सुधार की संभावनायें तो हो नहीं सकतीं; क्योंकि संघर्ष का नाम ही तो संसार है। यहाँ सभी मोह, राग, द्वेष और विषय-कषायों में आकंठ निमग्न हैं। यह विश्व सुधर सकता होता तो कभी का सुधर गया होता। जब अतुल्य बलशाली तीर्थंकर स्वयं इस संसार से विरक्त होकर आत्मसाधना के पथ पर चले गये तो अन्य की तो बात क्या है?

ह ह ह

सेठ मनमोहन ने अपनी सारी जिन्दगी जयपुर के परकोटे के भीतर की पुरानी बस्ती की अंधेरी गली के दो कमरों में गुजार दी, पर वह जिन्दगी भर बंगले में रहने का सपना देखता रहा और इसके लिए नीति-अनीति की परवाह न करके येन-केन प्रकारेण धनार्जन किया और करोड़पति बनने के



प्रयासों में सफल हो गया। अपनी इस भौतिक सफलता के फेर में हर्ष-विषाद के रूप में उसे जो आर्त-रौद्र ध्यान हुआ वह तो हुआ ही; परन्तु संयोग से कहें या पूर्व पुण्य के फल में एक दिन वह भी आया, जब उसे परकोटे के बाहर पूर्ण विकसित कॉलोनी में नव-निर्मित स्वर्ग नामक बहु मंजिला इमारत में मनचाही सबसे ऊपर की पूरी मंजिल मिल गई और उसने उसमें लगभग एक करोड़ की लागत से सभी आधुनिक सुविधाओं से संयुक्त स्वर्ग जैसा विशाल भवन बनाया। उसने उसका नाम भी **इन्द्रभवन** रखा।

सेठ मनमोहन का सबसे बड़ा सपना तो पूरा हुआ, फिर क्या था, वह उसमें ऐसा रम गया, मानो अब वह अनन्त काल तक इस भोगोपभोग सामग्री का मनमाने ढंग से उपभोग करता रहेगा; परन्तु कुछ ही समय बाद प्राप्त भोग सामग्री का सुखानुभव नहीं कर पाया कि आयकर विभाग ने उसे धर दबोचा। वार्शिंग मशीन में करेन्ट आ जाने से पत्नी की मौत हो गई। अभी-अभी खरीदी नई कार के एक्सीडेंट से बेटा अपाहिज हो गया। इस तरह पापानुबंधी पुण्य से प्राप्त उस भोगोपभोग सामग्री के द्वारा ही उस पर एक साथ अनेक मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा।

हृ हृ हृ

अब सेठ की समझ में आया कि पण्डितजी ने प्रवचन में ठीक ही कहा था हृ “अनुकूल-प्रतिकूल संयोग-वियोग होना तो सब पुण्य-पाप का खेल है, इसमें हर्ष-विषाद करने से संसार की परम्परा ही निरंतर वृद्धिगत होती है। अतः जो भी हुआ उसमें समता भाव रखना ही श्रेयस्कर है। मैंने भी अबतक अधिकांश पाप भावों के सिवाय और किया ही क्या है ?

भले ही जवाहरात के व्यवसाय में कोई जीव हिंसा नहीं होती, परन्तु राग-द्वेष भाव के रूप में हिंसानन्दी रौद्रध्यान, झूठ बोलकर धनार्जन में मृषानन्दी रौद्रध्यान, नम्बर दो के काम में चौर्यान्दी रौद्रध्यान एवं धन

संग्रह में परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान तो होता ही है, जिसका फल नरक निवास है, उसकी तुलना में अभी मुझे जो भी दुःखद फल मिला है, वह तो बहुत कम है। यदि अब भी मेरा वैसा ही आर्त-रौद्र ध्यान चलता रहा तो आगे भी निःसंदेह तिर्यच एवं नरक के भयंकर दुःखों में पड़ना ही पड़ेगा।

हृ हृ हृ

सेठ मनमोहन ने पत्नी के निधन के शोकपत्र में ‘**मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया**’ यह लिखवा कर जहाँ-तहाँ डाल तो दिए; परन्तु उसे बाद में बारम्बार विचार आया कि क्या सचमुच मेरी पत्नी का स्वर्गवास हुआ है ? उसे तत्त्व रुचि तो थी नहीं। पण्डितजी के प्रवचनों में कभी बैठी नहीं। संतानों के संयोग-वियोग में हर्ष-विषाद ही करती रही। गहनों और कपड़ों के संग्रह के रूप परिग्रह संग्रह की गृद्धता भी भरपूर थी। इन बातों को देखकर तो नहीं लगता कि स्वर्गवास हुआ होगा।

यद्यपि समय-समय पर दर्शन-पूजन, तीर्थयात्रा और दान-पुण्य जरूर किया करती, पर वह सब लौकिक मनोकामना के उद्देश्य से ही करती थी, उसे यह कुछ भी तो पता नहीं था कि हृ मुक्ति का स्वरूप क्या है ?, मुक्ति का मार्ग क्या है ? सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप क्या है ?, पूजा क्यों की जाती है ?, पूजा करने का प्रयोजन क्या है ?

गृहीत-अगृहीत मिथ्यात्व क्या है ? इसका भी तो उसे ज्ञान नहीं था ? भला, उसे स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? मान लो, मिल भी गया होगा तो उसके लिए भोगों के सिवाय वहाँ है भी क्या ? जीवन भर भोगों में अनुरक्त रहने और मरने के ६ माह पहले मंदार माला के मुरझाते ही मरण जानकर आकुल-व्याकुल होकर प्राणत्याग कर एकेन्द्रिय पर्याय में आकर फिर चौरासी लाख योनियों में ही तो चक्कर काटना पड़ेगा। सम्यग्दर्शन के बिना ऐसे स्वर्गवास से भी क्या लाभ ?

यद्यपि स्वर्ग में शारीरिक दुःख नहीं है, परन्तु वहाँ मानसिक दुःख बहुत है; क्योंकि वहाँ भी यहाँ के राजा की भांति इन्द्र, युवराज की भांति सामानिक, केबिनेट मिनस्टर्स की भांति त्रायत्रिंशत्, परिषद्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक (सैनिक), प्रकीर्णक (पुरवासी) अभियोग (सवारी के काम आनेवाले देव) और किल्विश (पाप बहुल) जाति के दस प्रकार के देव होते हैं। अभियोग और किल्विस सबसे कम पुण्यवाले होते हैं। जिस हाथी पर सवार होकर सौधर्म इन्द्र तीर्थकर के जन्मकल्याणक में आता है, वह ऐरावत हाथी अभियोग जाति का देव ही तो है।

ये दस प्रकार के देव क्रमशः हीन-हीन पुण्यवाले इन्द्र के अधीनस्थ-सेवक होते हैं। नीची श्रेणी के देव उच्च पदवाले देवों के पद एवं वैभव को देखकर दुःखी रहते हैं। वे सोचते हैं, काश ! ये उच्चपद हमें प्राप्त होते।

स्वर्ग में बे-मौत मर कर भी तो उस दुःख से जल्दी छुटकारा नहीं पा सकते, क्योंकि वहाँ की आयु अनपवर्त्य होती है। इसकारण सागरों पर्यन्त उस मानसिक पीड़ा को सहना ही पड़ता है।

पण्डित भागचन्दजी ने ठीक ही कहा है **ह स्वर्ग वासहूँ नीकौ नाहीं**

कोई कितना भी चिर-परिचित क्यों न हो? नजदीकी रिश्तेदार या अत्यन्त विश्वसनीय ही क्यों ना हो; फिर भी नर-नारी का एकसाथ एकान्तवास दोनों के सदाचार और शील सुरक्षा की दृष्टि से खतरे से खाली नहीं है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष का अधिक दोष नहीं होता, यह तो आग और घी की भाँति ऐसा संयोग है, जिसमें जरा सी सावधानी हटी और दुर्घटना घटी।

ह ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-१५



## ऐसे क्या पाप किये

यद्यपि बात पैतालीस वर्ष पुरानी है; परन्तु ऐसा लगता है मानो कल की ही बात हो। हमारा एक पड़ोसी मित्र था उसका नाम था लक्ष्मीनन्दन। लक्ष्मीनन्दन पहले कभी वास्तविक लक्ष्मीनन्दन रहा होगा, अभी तो वह लक्ष्मीवन्दन नाम को सार्थक कर रहा था। प्रतिदिन लक्ष्मी की देवी को अगरबत्ती लगाता; दीपक की ज्योति जलाता; पर हाथ कुछ नहीं लगता।

हमारा और उसका घर एक ही मकान के दो हिस्सों में बटा था। दोनों घरों के बीच एक पतली सी टीन की चद्दर का पार्टीसन था। इस कारण हम दोनों एक-दूसरे की किसी भी बात से अनभिज्ञ नहीं रह पाते थे; क्योंकि एक तो पार्टीशन ही ऐसा था जो उनकी या हमारी धीमी से धीमी ध्वनि को रोकने में समर्थ नहीं था। दूसरे, परस्पर एक दूसरे के दिल ऐसे मिल गये थे कि छोटी से छोटी बातें भी हमसे कहे बिना उसे चैन नहीं पड़ती थी। वह प्रतिदिन अपने दिल की और दुःखदर्द की बातें हमसे कहकर अपना जी हल्का कर लिया करता था।

यद्यपि वह स्वभाव से सज्जन था, धर्म के प्रति प्रेम भी था, नास्तिक नहीं था; पर उसे धर्म की समझ बिल्कुल नहीं थी। यद्यपि वह पत्नी आदि को प्रवचन सुनने एवं स्वाध्याय करने में बाधक नहीं बनता; पर स्वयं में प्रवचन सुनने व स्वाध्याय करने की रुचि बिल्कुल नहीं थी। अकेला कमानेवाला था और सात-सात व्यक्तियों के खर्चे का बोझ था उसपर। धंधा भी हाट-बाजारों में जाकर धूप में खड़े रहकर हाथ ठेले पर दुकान लगाकर हल्दी, मिर्च/मसाले और अगरबत्ती आदि जैसी छोटी-मोटी वस्तुएँ बेचने का था। पूँजी के अभाव में बिचारा और करता भी क्या?

जब कोई सहानुभूति में उसकी गरीबी की बात छोड़कर उसकी दुखती

नस छू लेता तो उसे शूल सा चुभ जाता था और वह अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने पुराने दिनों को यादकर गर्व से कहने लगता, “यह तो दिनों का फेर है वर्ना हम भी किसी लखपती से कम नहीं थे।”

उसके कहे अनुसार वह पहले बहुत सम्पन्न तो था ही, उसकी न केवल अपने गाँव में बल्कि आस-पास के अन्य गाँवों में भी अच्छी प्रतिष्ठा थी। परन्तु जब दुर्दिन आये, पुराना पुण्य क्षीण हुआ, अबतक पुण्य के फल में मस्त रहकर नया कुछ सत्कर्म नहीं किया तो चारों ओर से एक साथ विपत्तियों से तो घिरना ही था, सो घिर गया। जो अबतक सुख के साधन थे, वे ही दुःख दरिद्रता के कारण बन गये।

वह जिस गाँव में रहता था उस गाँव में उसकी खूब खेती थी, सारे गाँव में उसके बाप-दादा के जमाने से साहूकारी फैली थी। सब सुख के साधन सुलभ थे; किन्तु दुर्दिन आते ही वे कर्जदार ही विद्रोही हो गये और नकाब ओढ़कर डाकू बनकर लूटने-पीटने लगे। उन डाकू-लुटेरों के भय से भयाक्रान्त होकर सब कुछ छोड़कर रातोंरात शहर की ओर भागना पड़ा। तभी से उसके दुर्भाग्य का सिलसिला शुरू हो गया था।

एकमात्र जीवन का सहारा २२ वर्षीय बेटा तपेदिक से ग्रस्त हुआ और २४ वर्ष की उम्र में ही दिवंगत हो गया। उस पर एक दुःख का नया पहाड़ और टूट पड़ा। मानसिक तनाव और जरूरत से ज्यादा श्रम के कारण वह स्वयं बीमार रहने लगा, पत्नी भी बीमार और चिड़चिड़ी हो गई। उन दोनों में धार्मिक दृष्टि से परस्पर में वैचारिक मतभेद तो थे ही, एक दूसरे पर दोषारोपण करने से गृह कलह भी होने लगी। उनके मात्र एक बेटा और चार बेटियाँ थीं। बेटे के असमय में दिवंगत होने से वह बहुत निराश हो गया था। बेचारी चारों बेटियाँ इन सब परिस्थितियों के कारण दीन-दुःखी और भीगी बिल्ली की भाँति सहमी-सहमी रहती हुई समय बिता रही थीं।

चारों बेटियाँ क्रमशः १८ से २४ वर्ष की उम्र पार कर यौवन की ओर बढ़ रही थीं। लक्ष्मीनन्दन को उनके शादी-ब्याह का विकल्प सताने लगा था। उस समय उसकी समझ में यह नहीं आ सकता था कि ‘उनकी चिन्ता

की जरूरत उसे नहीं करना चाहिए; क्योंकि उनका भी अपना-अपना भाग्य है। उनके भी पहले यहीं/कहीं उनके वर पैदा हो गये हैं, जो समय आने पर स्वयं माँगकर ले जायेंगे, बाद में हुआ भी यही। लड़कियाँ सुन्दर थीं, सुशील थीं, इस कारण लड़के वालों की ओर से स्वयं शादी के प्रस्ताव आ गये और सुयोग्य वरों द्वारा वे वरण कर ली गईं; परन्तु तत्त्वज्ञान के अभाव में वह तब तक निश्चिन्त नहीं हो सका था जब तक उनके विवाह नहीं हो गये।

अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से घबड़ा कर वह देवी-देवताओं और मंत्र-तंत्रवादियों तथा ज्योतिषियों के चक्कर काटने लगा था। जो जैसा बताता तदनुसार गृहीत मिथ्यात्व के क्रिया-कलाप करने लगा। गरीबी में गीले आटे की कहावत उस पर चरितार्थ हुई। कमाई का बहुभाग देवी-देवताओं, मंत्र-तंत्रवादियों की भेंट पूजा-पत्री में चढ़ने लगा। उसकी गरीबी और बीमारी के कारण सहानुभूति दिखाने और सहयोग करने के बहाने चुस्त-चालाक लोग उन युवा लड़कियों से घंटों गप्पे लड़ाने आ बैठते और अपनी भावनाओं को कलुषित करते रहते। अड़ौसी-पड़ौसी बगलें झाँकते और उन पर हँसते तथा व्यंगबाण छोड़ते।

मैं संयोग से उनका सर्वाधिक निकट का पड़ौसी था और प्रवचनकार पण्डित भी। पड़ौसी का धर्म निभाने के नाते मैं उन्हें मंत्र-तंत्रवादी और उन आवारा लोगों पर लगाम लगाने की बहुत सोचता; परन्तु “मियाँ बीबी राजी तो क्या करे काजी” की परिस्थिति में मैं कुछ भी नहीं कर सकता था।

देवयोग से उनकी पत्नी मेरी धर्मसभा की दैनिक श्रोता थी। इस कारण उसे अपने पति की वे अज्ञानजनित मिथ्या क्रिया-कलाप बिल्कुल पसन्द नहीं थे। यदा-कदा दोनों ही अपना-अपना दुःखड़ा रोते मेरे पास आ जाते और लक्ष्मीनन्दन आँखों से आँसू टपकाता हुआ कहता हूँ ‘पण्डितजी हमने पूर्वजन्म में ऐसे क्या पाप किए, जिनका यह फल हमें मिल रहा है?’

यद्यपि उन्होंने पत्नी को हमारे प्रवचन में आने से कभी नहीं रोका, बल्कि उसकी गैर हाजरी में उसका चाय-नास्ता बनाने का काम भी स्वयं कर लेता और पत्नी को प्रवचन में जाने देता; परन्तु वह स्वयं स्वाध्याय में कभी नहीं आया, इस कारण मेरा मन उसे समझाने का नहीं होता। मैं सोचता इन्हें तत्त्व का कुछ भी अता-पता नहीं है, ऐसे व्यक्ति को मैं क्या समझाऊँ ? एक दिन वे फूट-फूट कर रोने लगे और बोले हूँ **आप दुनिया को समझाते हो। सबको दुख दूर करने का मार्गदर्शन देते हो, और आप स्वयं भी कितने सुखी हो; हमें भी कोई उपाय बताओ।** कोई मंत्र-तंत्र हो, कोई गंडा-ताबीज हो आप जो भी उपाय बताओगे, हम सब करेंगे?

मुझ से भी उनका दुःख देखा नहीं गया, मेरी आँखों में भी आँसू आ गये; पर मेरी समझ नहीं आ रहा था कि घंटे-आध घंटे में उसे क्या बताऊँ ? कैसे समझाऊँ ? कोई मंत्र-तंत्र और गंडा-ताबीज विद्या तो मुझे आती भी नहीं थी, बल्कि मैं तो उसे इस पाखण्ड से बचाना चाहता था।

अतः मैंने उससे कहा हूँ **“भैया! तुमने पूर्व जन्म में क्या पाप किए? यह तो मैं नहीं जानता; पर इतना अवश्य जानता हूँ कि आप वर्तमान भी पापपंक में आकण्ठ निमग्न हो। जब तक इस दल-दल से नहीं निकलोगे तब तक दुःख दूर नहीं होगा।”**

वह आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखने लगा। **“क्या कहा? मैंने अपनी याददाश्त में तो ऐसा कोई पाप नहीं किया।”** ऐसा कहकर वह एक-एक क्रिया कलाप गिनाने लगा।

मैंने कहा हूँ **“यह सच है कि तुमने किसी की हत्या नहीं की, किसी की झूठी गवाही नहीं दी, किसी का कभी एक पैसा भी नहीं चुराया, कभी किसी की माँ-बहिन बेटी को बुरी निगाह से नहीं देखा। कभी किसी का शोषण करके अनावश्यक धन का संग्रह नहीं किया। तुमने पाँचों पापों में एक भी पाप नहीं किया। बीच में ही बात काटकर वह बोला हूँ **“फिर आपने ऐसा कैसे कहा कि मैं पाप की कीचड़ में गले तक डूबा हूँ!”****

दिन-रात पाप-पंक में निमग्न लोगों को यह समझाना मेरे लिए भारी पड़ रहा था, कठिन हो रहा है कि मैं उन्हें कैसे बताऊँ कि वे कोई पाप भी कर रहे हैं; किन्तु करनी का फल ही तो जीवन में आता ही है अतः पाप तो उसने किया ही है, अन्यथा उसकी परिस्थिति क्यों बनती? ऐसे व्यक्तियों को यह विचार क्यों नहीं आता कि **“जब संकट के बादल सिर पर मंडरा रहे हैं, चारों ओर से विपत्तियाँ घेरे हैं, तरह-तरह की मुसीबतों में फँसे हैं, नाना प्रकार की बीमारियाँ शरीर में स्थाई निवास बना चुकीं हैं; तो ये सब पुण्य के फल तो हैं नहीं, कोई पाप ही किए होंगे, जिनको हम भूल गये हैं।”** और भगवान से पूछने लगे कि **हूँ हे भगवान! हमने पिछले जन्म में ऐसे क्या पाप किये थे? जिनकी इतनी बड़ी सजा हमें मिल रही है।**

जगत के जीवों की कुछ ऐसी ही मनोवृत्ति है कि वे पाप तो हंस-हंस कर करते हैं और उनका फल भुगतना नहीं चाहते। पुण्य कार्य करते नहीं हैं और फल पुण्य का चाहते हैं। वस्तुतः जीवों को पुण्य-पाप के परिणामों की पहचान ही नहीं है, पापबन्ध कैसे होता है, पुण्यबंध कैसे होता है, इसका पता ही नहीं है। वे बाहर में होती हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि को ही पाप समझते हैं, **आत्मा में हो रहे खोटे भावों को पाप ही नहीं मानते।** यही सबसे बड़ी भूल है, जिसे अज्ञानी नहीं जानता। इसी कारण दुःख के ही बादल मंडराते रहते हैं जब क्षणभर को भी तो शान्ति नहीं मिलती तो भगवान से पूछता है **भगवन्! यह कैसी विडम्बना है?**

लक्ष्मीनन्दन मन ही मन कहता है हूँ **“लोग कहते हैं पुण्य करो, धर्म करो, सुख होगा मैंने जीवन भर अपने कर्तव्य का पालन कर पुण्य ही तो किया, पाप बिल्कुल भी नहीं किया, फिर भी.....यह सब क्या चक्कर है? इसके सिवा और पुण्य क्या होता है? धर्म क्या होता है? कुछ समझ में नहीं आता। यद्यपि मैं रोज देवी की पूजा करता हूँ, घी के दीपक की ज्योत जलाता हूँ, वर्ष में एक दो बार तीर्थ कर आता हूँ फिर भी कुछ नहीं...।**

इससे मुझे ऐसा लगता है कि हूँ मैं कहीं भूल में तो हूँ हूँ अन्यथा यह दुःख क्यों?"

वस्तुस्थिति यह है कि अभी जीवों को पाप की भी सही पहचान नहीं है। हत्या, झूठ, चोरी, पराई माँ-बहिन-बेटी पर कुदृष्टि तो पाप है ही; परन्तु पाप-पुण्य का सम्बन्ध पर द्रव्यों से नहीं; बल्कि अपने परिणामों से होता है; अपने मिथ्या अभिप्राय से होता है, इसकी उसे खबर नहीं है।

जगत में कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है, भला-बुरा नहीं है, फिर भी उसे भला-बुरा मानना। तथा इष्ट-अनिष्ट मानकर उसमें राग-द्वेष करना। ऐसे मिथ्या अभिप्राय से दिन-रात आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप पाप परिणामों में डूबे इस व्यक्ति को यह समझ में नहीं आता कि इष्टवियोगज एवं अनिष्ट संयोगज तथा पीड़ा चिन्तन रूप आर्तध्यान और पाँचों इन्द्रियों के विषयों में आनन्द मानना उनके संग्रह में सुख होना मानना रौद्रध्यान है और यह भी पाप है। जबकि वास्तविकता यह है कि भले ही जीवन भर इसके द्वारा एक भी प्राणी का घात न हुआ हो, एक भी शब्द असत्य न बोला हो, इसी तरह चोरी, कुशील व बाह्य परिग्रह में किंचित भी प्रवृत्ति न हुई हो परन्तु देवी-देवताओं की उपासना रूप गृहीत मिथ्यात्व के साथ उक्त मिथ्या मान्यता से इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा-चिन्तन रूप आर्तध्यान करता रहे, विषयानन्दी रौद्रध्यान करता रहे तो ये सब पाप ही हैं। इसीतरह अपने परिवार के प्रति प्रीत करता हुआ उसमें आनन्द मनाये, तो ये भी हिंसांन्दी और परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान हैं जो पूर्णतः पाप परिणाम हैं, ये परिणाम ही दुःख के कारण हैं।

पुण्य के उदय में हर्ष मानना, पाप के उदय में खेद खिन्न होना, शरीर की संभाल में लगे रहना, देह की वृद्धि में प्रसन्नता और देह की क्षीणता में अप्रसन्नता! भला इन्हें कौन पाप गिनता है? परन्तु पण्डित बनारसीदास ने इन्हें ही सप्त व्यसन जैसे महापाप में गिनाया है ह

अशुभ में हार शुभ में जीत यही है द्यूतकर्म,  
देह की मगनताई यहै माँस भखिबो।  
मोह की गहल सों अजान यहैं सुरापान,  
कुमति की रीति गणिका को रस चखिबो।।  
निर्दय है प्राण घात करबो यहै शिकार,  
पर-नारि संग पर-बुद्धि को परखिबो।  
प्यार सों पराई सौँज गहिबे की चाह चोरी,  
ऐ ही सातों व्यसन विडारि ब्रह्म लखिबो।।

जो मिथ्या मान्यता के कारण अशुभ उदय आने पर प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी हार मानता है तथा शुभोदय में अनुकूल स्थिति में अपनी जीत मानता है; वह एक तरह से जुआरी ही है; जो हर्ष-विषाद रूप परिणाम जुआ की जीत-हार में होते हैं, वैसे ही हर्ष-विषाद के परिणाम जिसने पुण्य-पाप के उदय में किए तो फल तो परिणामों का ही मिलता है न? इस कारण जुआ में हर्ष-विषाद और पुण्य-पाप के उदय से हुए हर्ष-विषाद में कोई अन्तर नहीं है। इसी तरह मांसल देह में एकत्व व ममत्वबुद्धि से एवं सुख की मान्यता से उसमें मग्न होना भी माँस खाने जैसा व्यसन ही है?

शराब पीकर मूर्च्छित हुआ या मोह में मूर्च्छित हूँ दोनों में कोई अन्तर नहीं है, मूर्च्छा तो दोनों में हुई न! अतः मोही जीव का मोह भी एक प्रकार से शराब पीने जैसा व्यसन ही है।

ये कुबुद्धि या व्यभिचारणी बुद्धि वैश्या व्यसन जैसा है। निर्दय होकर किसी भी प्राणी की हिंसा में प्रवृत्ति शिकार व्यसन है तथा दूसरों की बुद्धि की परख करने को परस्त्री सेवन व्यसन कहा है। दूसरों की वस्तु रागवश ग्रहण करना चोरी व्यसन है। कवि का कहना है कि इन सात व्यसनो में सुख की मान्यता के त्यागपूर्वक आत्मा को जाना/पहचाना जा सकता है।

इसी प्रकार पुत्र-पुत्रियों से प्रीति करना, उनमें ममत्व रखना, उनके वियोग में दुःखी होना, देह में एकत्व रखना उसके ही संभालने में रत

रहना, शरीर में रोगादि होने पर दुःखी होना, शारीरिक पीड़ा होने पर व्याकुल हो उठना इसमें भी पाप है, ऐसा बहुत ही कम लोग जानते हैं, जबकि ये आर्तध्यान रूप पाप परिणाम है। पंचेन्द्रिय के भोगों में सुख बुद्धि होना, उन्हें जुटाने की कामना में लगे रहना भी कोई पाप है, यह बात भी लोगों की समझ के बाहर ही है। अन्यथा हिंसादिक की तरह इसे क्यों नहीं छोड़ देते? तथा आत्मा में रागादिक की उत्पत्ति ही हिंसा है, इस हिंसारूप पाप परिणामों की पहचान हमें नहीं है, बस ये ही कुछ ऐसे कारण हैं कि जिनके कारण हम दिन-रात पाप करते हुए भी स्वयं को पापी नहीं मान पाते और जब इन पापों का परिणाम (फल) जीवन में आता है तब आश्चर्य होता है कि “अरे! मैंने ऐसे क्या पाप किए?”

आश्चर्य इसका नहीं होना चाहिये कि कौन से पाप किये, बल्कि आश्चर्य तो यह है कि मिथ्यामान्यतावश दिन-रात पाप भाव में रहते हुए ऐसा महान पुण्य कब बाँध लिया, जिससे यह मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, जिनधर्म की शरण और धर्म के अनुकूल वातावरण प्राप्त कर लिया? यह अनुकूलता निश्चय ही कोई महान् पुण्य का फल है, यह मौका अनन्त/असंख्य प्राणियों में किसी एकाध को ही मिलता है जिसे हम प्राप्त करके प्रमाद में खो रहे हैं। यदि यह अवसर चूक गये तो ...

“यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवो जिनवाणी।

इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥”

एक दिन मौका पाकर मैंने उसे यह सब समझने के लिए प्रेरित किया और प्रवचन में पहुँचने की सलाह दी तो सौभाग्य से उसने मेरी बात मान ली और प्रवचन में आना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे उसे भी रुचि लग गई। एक दिन प्रवचन में निकला हूँ

“यह एक नियम है कि ध्यान के बिना कोई भी संसारी जीव नहीं है। कोई न कोई ध्यान प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। यदि व्यक्ति का अभिप्राय, मान्यता सही नहीं है तो उसे आर्त-रौद्रध्यान ही होते हैं, क्योंकि धर्मध्यान तो मिथ्या मान्यता में होता ही नहीं है। धर्मध्यान तो सम्यक्दृष्टि जीवों के

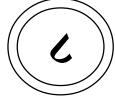
ही होता है। सामान्य जीवों के मिथ्यात्व की भूमिका में तो निरन्तर आर्त व रौद्रध्यान ही होते हैं इनमें रौद्रध्यान जो कि पापों में आनंद मानने रूप होता है, सदा अशुभ या पाप रूप ही होता है। आर्तध्यान दुःख शोक रूप होता है, इसमें शुभ-अशुभ का भेद पड़ता है इसमें अज्ञानियों के तो अधिकतर पाप रूप परिणाम ही रहते हैं, अतः भले ही प्रगट रूप में पाप न किये हों फिर भी अभिप्राय (मान्यता) में तो निरन्तर पाप रूप ही परिणाम रहते हैं, उन्हीं में कर्मों की स्थिति व अनुभाग (फल देने की शक्ति) अधिक पड़ती है। तदनुसार जीवन में दुःख आना स्वाभाविक ही है। करणानुयोग शास्त्रानुसार जितना बीच-बीच में शुभभाव होता है उतनी राहत तो असाध्य रोगों व दुःखों के बीच में भी मिल ही जाती है, पर उस सागर जैसे दुःख में इस बूँद जैसे सांसारिक सुख का क्या मूल्य? इससे किसी प्रकार भी संसार के दुःख से छुटकारा नहीं मिल सकता। ऐसी स्थिति में इस जीव को सुखी होना हो तो पुण्य पाप परिणामों की पहचान के लिए जिनवाणी का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। पण्डित भागचन्दजी ठीक कहते हैं ह

अपने परिणामनि की संभाल में, तातें गाफिल मत हो प्राणी।

यहाँ ‘गाफिल’ शब्द के दो अर्थ हैं एक तो सीधा-सादा यह कि परिणामों की संभाल में सावधान रहो, अपने शुभाशुभ परिणामों को पहचानों और अशुभ भावों से बचो। दूसरा अर्थ है कि शुभाशुभ परिणामों में ही गाफिल (मग्न) मत रहो, अपने परिणामी द्रव्य को पहचानों तभी परिणाम हमारे स्वभाव सन्मुख होंगे।”

यह प्रवचन सुनते ही लक्ष्मीनन्दन को उसके प्रश्न का उत्तर तो मिल ही गया। साथ ही सन्मार्ग में अग्रसर होने की रुचि भी जागृत हो गई और वह पत्नी के साथ प्रतिदिन प्रवचन सुनने आने लगा। ॐ नमः।

- पाठक प्रस्तुत कथानायक को अपने अन्तरंग में ही खोजें, आजू-बाजू में न झाँकें।
- परिणामों की विशेष पहचान हेतु ‘इन भावों का फल क्या होगा’ पुस्तक पढ़ें।



## यदि स्वर्ग-नरक नहीं हुए तो

यद्यपि आनन्दपुर एक छोटा-सा गाँव है; पर वह नदी, पहाड़ों के बीच प्राकृतिक सम्पदा से युक्त होने से एक पर्यटक केन्द्र तो बन ही गया, धर्मस्थल भी बन गया। वहाँ गाँव के निकट कल-कल शब्द करती एक नदी बहती है, जो कभी सूखती नहीं है, जिसकी धारा कभी टूटती नहीं है। गाँव के चारों ओर पहाड़ी प्रदेश है। वहाँ का सूर्यास्त दृश्य तो दर्शनीय है ही और भी अनेक प्राकृतिक झरने तथा नदी का नौका-विहार आदि भी आकर्षण के केन्द्र हैं।

विभिन्न धर्मावलम्बियों के अनेक विशालकाय मन्दिर तथा स्वास्थ्य साधना केन्द्र हैं। पर्यटक केन्द्र बनने से भोगोपभोग के भी सभी साधन उपलब्ध हो गये हैं। देशी-विदेशी यात्रियों के आवागमन से वहाँ के अधिकतम मूल निवासी एवं प्रवासी व्यापारी श्री सम्पन्न हैं।

ह ह ह ह

वहाँ एक बहत्तर वर्षीय बूढ़ी अम्मा सपरिवार रहती है, अब धर्मध्यान और स्वाध्याय करना ही उनका प्रमुख काम है। उसने पुराणों में पढ़ा कि इस मध्यलोक के अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे अधोलोक में नरक एवं अर्द्धलोक में स्वर्ग हैं। नरकों में बहुत काल तक भयंकर दुःख भोगने पड़ते हैं और स्वर्गों में सभी प्रकार के सांसारिक सुख मिलते हैं। जीवों को घोर पाप के फल में नरक और सत्कर्मों के फल में स्वर्ग मिलता है। इस कारण वह बूढ़ी अम्मा खूब दान-पुण्य करती। अम्मा को धर्म-कर्म का अधिक ज्ञान तो

नहीं था; पर धर्म के नाम पर व्रत-उपवास करती, पूजा-पाठ करती, जीव दया का पालन करती, पापों से परहेज रखती। शुद्ध खान-पान का पूरा ध्यान रखती और संतों का सत्संग भी करती।

वहीं उसी मुहल्ले में एक बावन वर्ष का व्यक्ति भी सपरिवार रहता है, जो उम्र के हिसाब से तो प्रौढ़ है; पर दुर्व्यसनों के कारण तन-मन से बूढ़े से भी अधिक गया-बीता लगने लगा है; क्योंकि पान-तम्बाखू खाने से उसके दाँत सड़ गये, बहुत तो गिर ही गये। चिन्ताओं से बाल पक गये, चेहरे पर झुरियाँ पड़ गईं। उसका इकलौता बेटा भी लगभग उसी की लाइन पर चलने लगा है, पर होटल चलाने से उनकी आजीविका अच्छी हैं अतः परिवार पल रहा है।

वह उस बूढ़ी अम्मा की यह कहकर हँसी उड़ाया करता है कि ह किसने देखे नरक-स्वर्ग? यह अम्मा तो व्यर्थ ही व्रत-उपवास करके अपना शरीर सुखाया करती है। भगवान के नाम पर पत्थरों की पूजा किया करती है। आज तक किसी ने असली भगवानों को तो देखा नहीं कि ह वे कैसे हैं? कौन हैं? कहाँ रहते हैं? बस, पण्डितों एवं पुजारियों की पोथियों में और भक्त कवियों की किताबों में ही सब कुछ धरम-करम की चर्चायें हैं।

जब मन्दिरों में बैठे भगवानों को ही चोर चुरा ले जाते हैं और वे मूर्ति चोर पकड़े भी नहीं जाते। इस तरह जब वे स्वयं की ही रक्षा नहीं कर सकते तो वे भक्तों की क्या रक्षा करेंगे?

भगवान की पूजा करने वाले पण्डे-पुजारी एवं पण्डित स्वयं परेशान रहते हैं। दान-दक्षिणा से अपना पेट पालते हैं और उन्हें न मानने पूजने वाले नास्तिक मौज करते हमने अपनी आँखों देखे हैं।”

ह ह ह ह

जब वह तन-मन से बूढ़ा बावन वर्षीय बीमार व्यक्ति ऐसी बातें करते हुए बीच-बीच में खाँसी से हाँपने लगता, खाँसते-खाँसते खून की उल्टी करने लगता, पेट पकड़ कर बैठ जाता तब उसका हाल-बेहाल देखकर उससे बीस वर्ष बड़ी-बूढ़ी अम्मा उसे डाँटती-फटकारती हुई करुणाभरे स्वर में कहती हूँ अरे भले मानस! तूने जवानी के जोश में होश खोकर मौज-मस्ती के नाम पर जो कु-कर्म किए, उसका तो नतीजा तेरे सामने आने ही लगा है। तेरा बेटा भी तुझे देखकर तेरी राह पर ही चलने लगा है।

तू कहता है कि हूँ “किसने देखे नरक-स्वर्ग? किसने देखे असली भगवान?”

बेटा! यद्यपि मैं अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हूँ; परन्तु काम चलाऊ पुराण-वगैरह तो पढ़ ही लेती हूँ, मैं जितना पढ़ती हूँ उसका सार भी मुझे समझ में आ जाता है। सौभाग्य से इतनी समझ मुझमें है कि जिससे यह पता तो चल ही जाता है कि पापी नरक में कैसे-कैसे दुःख पाते हैं और पुण्यात्मा स्वर्ग में कैसे सुखी रहते हैं और धर्मात्माओं को वीतराग मार्ग पर चलने से मुक्ति मिलती है।

मैं मुक्ति के लायक धर्म का पुरुषार्थ तो अभी नहीं कर पा रही हूँ; पर मुक्ति पाने के प्रयत्न में व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के जो शुभभाव होते हैं, उनके निमित्त से पापों से तो बची ही रहती हूँ। स्वर्ग के लायक पुण्य भी बंध ही जाता है। बेटा! तू अपनी सोच! ऐसी हालत में तेरा शेष जीवन भी कैसे कटेगा?”

तू कहता है हूँ “किसने देखे नरक-स्वर्ग? खाओ, पियो और मौज करो; पर अफसोस तो यही है कि तूने मौज-मस्ती भी कहाँ कर पायी? बीड़ी-सिगरेट से फेंफड़े खराब कर लिए, मदिरा-माँस से आतें सड़ा-गला लीं, जुआ आदि दुर्व्यसनों से इज्जत-आबरू गमा दी, झूठ, चोरी, कुशील

से पत्नी-पुत्र-परिवार का विश्वास और स्नेह खो दिया। तुझे देख तेरा बेटा भी बिगड़ रहा है। अब तू ‘न घर का रहा न घाट का।’ कुते मौत मरने जैसी तेरी हालत हो गई है। क्या इसे ही मौज-मस्ती से जीना कहते हैं?

अरे! तेरी मान्यता अनुसार ही सही। मानो स्वर्ग नरक न भी हुए तो भी मेरा क्या बिगड़ा? संयम से रही, शुद्ध खान-पान रखा, भले काम करने से चित्त में प्रसन्नता रही, निश्चिन्त और संतुष्ट रही। इन्ही सभी कारणों से अभी बहत्तर वर्ष की उम्र में तन्दुरुस्त हूँ।

मैं तो किसी भी तरह घाटे में नहीं हूँ, चाहे नरक-स्वर्ग हों या न हों; यदि होंगे तो मुझे तो निश्चित स्वर्ग ही मिलेगा; क्योंकि मैंने नरक जाने जैसे पाप तो किए ही नहीं; परन्तु कदाचित् नरक-स्वर्ग हुए तो तेरा क्या होगा? अपनी सोच! तूने तो नरकों के अस्तित्व से इन्कार कर निर्भयता से स्वच्छन्द होकर जो दुर्व्यसन सेवन किए उनसे वर्तमान जीवन को ही भरी जवानी में यहीं नरक बना लिया है।

ओ बेटा! और सुन! इस जीवन में कोई एक हत्या करता है, तो जब उसे एक बार फाँसी की सजा अर्थात् मृत्युदण्ड दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई दिन में हजारों हत्यायें करता हो तो उसे हजार बार मृत्यु दण्ड मिलना चाहिए, जो इस जीवन में संभव नहीं है, अतः एक ऐसा स्थान भी होना ही चाहिए, जहाँ अनेक हत्याओं के बदले में अनेक बार मृत्यु दण्ड का दुःख भोगना पड़े? बस उसी स्थान का नाम नरक है।” उन नरकों में नारकी परस्पर में ऐसी कषाय करते हुए लड़ते हैं कि एक-दूसरे के शरीर के तिल-तिल के बराबर टुकड़े कर देते हैं, जिससे दुःख तो मरण तुल्य होता है; पर मरता नहीं है, पारे की भाँति वह शरीर फिर जुड़ जाता है। छहदाला में कहा भी है हूँ **तिल-तिल करें देह के खण्ड, असुर भिड़ावें दुष्ट-प्रचण्ड।**



और जो तू यह कहता है कि “मैंने पत्थर पूजे सो तेरा यह मानना सर्वथा मिथ्या है। यद्यपि मैं अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, पर इतना तो मैंने ज्ञानी संतों के समागम से समझ ही लिया है कि ह्व हम इन मूर्तियों के माध्यम से उन मूर्तिमान वीतरागी सर्वज्ञ परमात्माओं की पूजा, स्तवन एवं गुणगान करते हैं, जो स्वयं पतित से पावन हो गये हैं और हमें पतित से पावन बनने का मार्ग बता गये हैं। इस कारण हम भी एक दिन उन्हीं के बताये मार्ग पर चल कर परमात्मा बन जायेंगे, मुक्ति प्राप्त कर लेंगे।

तब वह .... बोला .... अम्मा! तेरा मानना और कहना शत प्रतिशत सही है। मैं ही अब तक मार्ग से भटका हुआ था। अब मेरी समझ में अच्छी तरह आ गया है कि निःसंदेह नरक-स्वर्ग हैं? जीवों का पूर्वजन्म-पुनर्जन्म होता है।



## मोय सुन-सुन आवे हाँसी

‘जन्म से अन्धा और नाम नयन सुख’ कहावत को चरितार्थ करनेवाले ‘दुखिया’ का नाम उसके पिता ने पता नहीं क्या सोच कर ‘सुखानन्द’ रखा होगा; जबकि उसका जन्म तो रोते-रोते हुआ ही, बचपन में ही माँ के दिवंगत हो जाने से बेचारे का बचपन भी दुःखमय ही रहा।

पिता की गरीब स्थिति के कारण न तो ढंग से पालन-पोषण हुआ और न पढ़ाई ही पूरी हो सकी। इसतरह न शारीरिक विकास हो सका और न बौद्धिक विकास ही हुआ।

1

किशोर अवस्था में सुख की तलाश में यत्र-तत्र भटकते हुए संयोग से वह दुःखिया एक दिन नदी के किनारे बने एक योगी के आश्रम में जा पहुँचा। योगी ने उसे सुपात्र जानकर सांसारिक सुख के सन्दर्भ में बताया कि **ह्व पहले में पहला सुख निरोगी काया ही है;** क्योंकि निरोगी काया में ही मानसिक और बौद्धिक विकास होता है, प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण जिसकी कमी तुम में अभी है। अतः तुम सर्वप्रथम नियमित योगासन, प्राणायाम और संतुलित आहार के द्वारा अपने तन-मन को दुरुस्त रखो और प्रसन्न रहो। सब ठीक हो जायेगा। तुम चाहो तो एतदर्थ आश्रम में रह कर यह काम कर सकते हो, पर तुम्हें इस कार्य के बदले में अपनी सेवायें आश्रम को देनी होंगी।”

योगीजी ने आसन-प्राणायाम के और भी ऐसे अनेक लाभ बताये, जिनसे छोटी-मोटी बीमारियों से भी बचा जा सकता है।

बस, तभी से सुखानन्द ने योगासन और प्राणायाम करने का संकल्प

भूत को तो भुलाना ही पड़ेगा। वर्तमान को संभालने से भविष्य अपने आप संभल जाता है। अतः वह जब चेता तभी ठीक। कल्याण होने में देर ही क्या लगती है? अनन्त काल की भूलों को मेटने के लिए अनन्त काल थोड़े ही लगता है? जिसप्रकार रातभर के स्वप्न जागते ही समाप्त हो जाते हैं; ठीक उसीप्रकार भेदज्ञान होते ही, सम्यग्ज्ञान का सूर्य उदित होते ही, सारा अज्ञान अन्धकार नष्ट हो जाता है और पापाचार छूट जाते हैं।

ह्व ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-१२२

तो कर लिया; पर पिता की बीमारी के कारण वह वहाँ अधिक नहीं रुक सका। अतः प्राणायाम की पद्धति सीखने के बाद कुछ दिन रहकर ही उसे वृद्ध बीमार पिता की सेवा के लिये योगी के आश्रम से घर आना पड़ा।

परन्तु उसने निरोगी काया को ही सुख का साधन मानकर और प्राणायाम को ही धार्मिक क्रिया मानकर अन्य सभी धार्मिक क्रियाओं को गौण कर दिया, जबकि प्राणायाम मात्र स्वास्थ्यलाभ का ही अभियान है। धर्म से इसका कुछ भी सम्बंध नहीं है।

ह ह ह ह ह

जब आसन और प्राणायाम करते-करते भी उसे अनेक रोग हो गये तो वह दौड़ा-दौड़ा योगीजी के आश्रम में यह जानने के लिये पुनः पहुँचा कि कहीं मेरे आसन-प्राणायाम की विधि में कोई त्रुटि तो नहीं हो रही है; परन्तु आश्रम में पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि योगीजी तो स्वयं अस्पताल में भर्ती हैं। उन्हें ब्लड कैंसर हो गया है एवं लकवे का असर भी हो गया है।

सुखानन्द को योगीजी के प्रति प्रेम तो हो ही गया था। अतः वह न केवल सहानुभूति दिखाने के लिये; बल्कि यह जानने के लिये भी अस्पताल पहुँचा कि ह ऐसे संयमी योगी व्यक्ति को ऐसी बीमारी कैसे हो गई? और ऐसे संकट के समय में उनके किस काम आ सकता हूँ?

सुखानन्द ने अस्पताल पहुँचकर सान्त्वना देते हुए योगीजी से पूछा ह “योगीजी, आपको यह क्या हो गया? आपका तो नारा ही यह था कि ‘योग भगाये रोग।’ आप तो पूरे आत्मविश्वास के साथ यह कहा करते हैं कि ह योग से सभी रोग दूर किये जा सकते हैं। इसीकारण आप योग की साधना में इतने तन्मय हो गये कि आपने अपने गृहस्थ जीवन को योग में बाधक मानकर शादी तक नहीं की, गृहस्थी ही नहीं बसाई; जबकि पत्नी जैसी समर्पित भाव से सेवा करती है, दुःख के दिनों में साथ देती है, समय पर शुद्ध सात्विक भोजन-पान कराती है, वैसी सुविधाओं की आशा और अपेक्षा अन्य किसी से नहीं की जा सकती, फिर भी आपने शादी नहीं की।

योगसाधना से समर्पण की भावना से आपका यह त्याग प्रशंसनीय कहा जा सकता है, परन्तु व्यक्तिगत रूप से कष्टकारक तो है ही। अस्तु मेरे योग्य सेवा आप अवश्य बतायें।”

योगीजी अस्पताल में अकेले पड़े कराह रहे थे। उस संकटकाल में माँ और पत्नी की भाँति समर्पित भाव से सेवा करनेवाला तो वहाँ कोई था नहीं तथा औषधोपचार के लिए धन की भी पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी; क्योंकि योगी होने के कारण में उन्होंने अपने लिए धनार्जन की भी परवाह नहीं की थी।

योगीजी लड़खड़ाती जबान से बोले ह “भैया! जब पूर्वोपार्जित पुण्य क्षीण हो जाता है और असाता कर्म का उदय आता है तब अकेले आसन और प्राणायाम व्यक्ति को निरोग नहीं रख सकते। अतः स्वास्थ्य लाभ के लिए योगासन-प्राणायाम करने के साथ स्वतंत्र आजीविका के लिए न्याय-नीति से धनार्जन करना तथा गृहस्थावस्था में अपने परिवार के साथ जीवन-यापन करना ही सर्वोत्तम है।

यद्यपि पैसा ही सब कुछ नहीं है, अतः अन्याय-अनीति से धनार्जन तो नहीं करना चाहिए; परन्तु गृहस्थ जीवन में तो पैसा भी बहुत कुछ है; क्योंकि सांसारिक जीवन में धन के बिना भी तो काम नहीं चलता। अतः न्याय-नीति से धनार्जन भी करना चाहिए ह यह बात मेरी समझ में अब आई है।

देखो न! आज औषधोपचार के लिये जितना पैसा चाहिए, उतना नहीं है तो किस के सामने हाथ पसारें?”

ह ह ह ह ह

फिर क्या था, योगीजी की विषम परिस्थितियों से सबक सीखकर सुखानन्द ने योग के साथ सत्कर्म करने का संकल्प तो किया ही, धनार्जन पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया। पुण्ययोग से पैसा भी खूब हो गया और स्वास्थ्य भी ठीक हो गया; परन्तु सुखानन्द फिर भी नहीं सुखी नहीं हुआ;

क्योंकि पत्नी के अभाव में इतना श्रम करने पर भी उसे दिन में दो बार सुख से गरम-गरम रोटियाँ समय पर मिल जायें, इसकी व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। इसकारण अब उसे पत्नी, पुत्र एवं परिवार की कमी खटकने लगी।

उसे ऐसा लगा कि जब अर्जित धन का उपयोग करने/करानेवाला ही कोई न हो, सुख के साधन जुटानेवाला ही कोई न हो, तो ऐसे धन से भी क्या लाभ ?

यदि संसार में पहला सुख निरोगी काया और दूसरा सुख घर में माया अर्थात् धन का होना जरूरी है, तो निःसंदेह तीजा सुख कुलवन्ती नारी और चौथे सुख के रूप में आज्ञाकारी पुत्र का होना भी अनिवार्य है। इनके बिना भी पारिवारिक सुख संभव नहीं है। यह सोचकर उसने शादी कर ली और भाग्योदय से दो वर्ष में ही घर में किलकारियाँ भरता कुल की शोभा बढ़ाता हुआ पुत्र भी हो गया।

अब तो उसे ऐसा लगने लगा मानो मुझे सब सुखों की निधियाँ मिल गयी हों। परन्तु यह अनुकूलता भी क्षणिक ही है। अब उसे पुत्र को लाड़-प्यार से लालन-पालन करने और पढ़ाने-लिखाने तथा अच्छे सदाचार के संस्कार डालने की चिन्ता सताने लगी।

ह ह ह ह  
पत्नियों के भी कुछ स्वप्न होते हैं, जिसे वे शादी के पहले से ही संजोए रहती हैं और शादी के पश्चात् पति के सहयोग से उन्हें पूरा करने के लिए आशान्वित रहती हैं।

सुखानन्द की पत्नी भी इसका अपवाद नहीं थी। उसे भी वे सब अपेक्षाएँ अपने पति से पूरी करने की प्रतीक्षा थी। अवसर पाते ही पत्नी के द्वारा बहुमूल्य वस्त्र, अतिमूल्यवान आभूषण और नाना प्रकार की भोगोपभोग सामग्री की ऐसी-ऐसी फरमाइशें होने लगी, जिनकी पूर्ति करना प्रथम तो सुखानन्द के सीमित बजट में संभव ही नहीं था। दूसरे, योगीजी के सम्पर्क में रहने से 'सादा जीवन उच्च विचार' का आदर्श उसके रोम-रोम में समा

गया था। इसकारण पत्नी की कल्पनातीत अपेक्षाओं की पूर्ति करने को वह मानसिक रूप से तैयार भी नहीं हो पा रहा था।

सुखानन्द ने योगीजी से यह सुना था कि व्यक्ति को सुखी रहने के लिये अपने सीमित साधनों में सन्तुष्ट रहना चाहिए। अन्यथा प्रत्येक प्राणी का आशासूची गढ़ा इतना बड़ा है कि सारे विश्व का वैभव उस गढ़े के एक कोने में पड़ा रहेगा। अतः विषयों की तृष्णा व्यर्थ है।

इसप्रकार की मानसिकता के कारण सुखानन्द अपनी पत्नी की भावनाओं की पूर्ति नहीं कर पाने से वह आकुलित रहने लगा।

इस तरह सब लौकिक सुख-सुविधायें पाने के बाद भी सुखानन्द के सामने सच्चा सुख पाने की समस्या ज्यों की त्यों खड़ी रहीं।

संयोग से एक दिन वह उसी नदी के तटवर्ती पर्वत की गुफा में सच्चे सुख की साधना करनेवाले आध्यात्मिक संत की शरण में जा पहुँचा और उसने संत से हाथ जोड़कर निवेदन किया हूँ हे गुरुदेव! यद्यपि मेरे पिता ने मेरा नाम सुखानन्द रखा है, पर मुझे जीवन में किंचित् भी सुख नहीं मिला। मैं सुख की तलाश में बहुत भटका हूँ, जिसने जहाँ सुख बताया, उसे पाने के लिये मैंने कोई कसर उठाकर नहीं रखी; फिर भी मैं सुखी नहीं हुआ।

जब मुझे पता चला कि आप ज्ञानी हैं, स्वयं तो सुखी हैं ही, दूसरों को भी सुख का सन्मार्ग सदैव बताया करते हैं, तो मैं तुरंत आप की खोज करते हुए आप की शरण में आया हूँ।'

ह ह ह ह  
संत साधारण पुरुष नहीं थे, उन्होंने संसार सागर का किनारा पा लिया था। अब उनके पास परहित के कार्यों में अटकने को एक क्षण का भी समय नहीं था। अतः उन्होंने सुखानन्द को उसकी समस्या के समाधान के लिये मीना नाम की मछली से मिलने को कहा तथा उसका पता बता दिया और स्वयं ध्यानस्थ हो गये।

संत ने मीना मछली का परिचय देते हुए कहा कि हूँ “यद्यपि मीना तिर्यचगति में है व जलचर प्राणी है तथापि संज्ञी पंचेन्द्रिय है, ज्ञानी है, मेरी भी परोक्ष रूप से प्रथम गुरु वही है।”

सुखानन्द की समझ में यह नहीं आ रहा कि मेरी इतनी जटिल समस्या का समाधान एक जलचर जीव कैसे कर सकेगा ? परन्तु वह इतना साहस नहीं जुटा पा रहा था कि वह संत का ध्यान भंग कर उनसे पुनः पूछे। अतः उसने सोचा हूँ ‘चलो चलते हैं, संभव है संत का इसमें भी कोई रहस्य छिपा हो। संतों के हृदय का रहस्य पाना भी तो कोई सहज नहीं है।’

फिर क्या था, सुखानन्द उस असमंजस में ही मीना मछली का पता पूछते-तलाशते उसके पास पहुँच गया और संत के नाम का उल्लेख करते हुए बोला हूँ हे मीना! तुम मुझे बताओ कि सच्चा सुख कहाँ है ? कैसे प्राप्त होगा ?

उत्तर में मीना मछली ने संकेत की भाषा में सुखानन्द से कहा हूँ “मुझे जोर की प्यास लगी है। मेरा गला सूख रहा है। अतः पहले तुम कहीं से एक लोटा पानी ला दो, तभी मैं तुम्हें सुखी होने का उपाय बता सकूँगी।”

मछली की यह अटपटी बात सुनकर सुखानन्द आश्चर्यचकित तो हुआ ही, उसे हँसी भी आ गई। वह इतना हँसा....इतना हँसा कि हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। आँखों में आँसू तक छल-छला आये। उसे हँसता देखकर मछली और भी जोर-जोर से खिल-खिलाकर हँसने लगी। मछली को इसतरह खिल-खिलाकर हँसता देख सुखानन्द ने गंभीर होकर मछली से पूछा हूँ ‘तुम क्यों हँस रही हो?’

मछली ने कहा हूँ “जिसकारण तुम हँस रहे हो, उसीकारण मुझे हँसी आ रही है। यदि पानी में आकंठ निमग्न रहने पर मैंने स्वयं को प्यासा बताया और तुमसे बाहर से पानी लाने को कहा तो तुम्हें मुझ पर हँसी आ गई तो तुम भी तो सुख के सागर में आकंठ निमग्न हो, सुख गुण से लबालब भरे हो, सुख और आनन्द के ही घनपिण्ड हो, इसीकारण तो तुम्हारे पिता

ने तुम्हारा नाम सुखानन्द रखा है; फिर भी तुम सुख के लिये इधर-उधर भटक रहे हो, भोगों के भिखारी बन गये हो। जब वहाँ कहीं भी सुख नहीं मिला, तो सुख पाने के लिये संत की शरण में जा पहुँचे।’

अरे भाई! वह सन्त भी एक दिन सुख की तलाश में तुम्हारी तरह ही मारा-मारा फिरता था। वह भी यहाँ आया था। मैंने उससे भी पानी मंगाया था तो वह भी ऐसा ही हँसा था और उसने कहा था कि ‘मोय सुनि-सुनि आवे हाँसी, पानी में मीन प्यासी।’ तब मैंने उससे भी यही सब कहा था और फलस्वरूप अब उसने अपने को जानकर, पहचानकर अपनी सुखनिधि को पा लिया है। यद्यपि अब वह संत बन गया है, परन्तु जब यहाँ आया था, तब संत नहीं था, फिर भी उसने अन्तर्मुख होकर सच्चे सुख का आंशिक आनन्द प्राप्त कर लिया है। यदि तुम भी अन्तर्मुख होकर उस सुख के सागर स्वरूप अपने आत्मा को जानो, पहचानो क्षणभर उसमें डूब जाओ तो पर्याय में तुम भी सच्चे सुख का स्वाद पा लोगे।

हूँ हूँ हूँ हूँ

मछली ने एक बुढ़िया की कहानी सुनाते हुए आगे कहा हूँ ‘एक बुढ़िया थी। वह घर के बाहर अंधेरे में कुछ खोज रही थी। वहाँ से एक लड़का निकला। लड़के ने यों ही कौतूहलवश उस बुढ़िया से पूछ लिया हूँ ‘अम्मा! क्या खोज रही है?’

अम्मा ने कहा हूँ ‘बेटा! सुई खोज रही हूँ।’

लड़के ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा हूँ ‘सुई जैसी चीज और वह भी अंधेरे में! अरे अम्मा! उजले में खोज उजले में।’

अम्मा उस लड़के की बात मानकर पास ही में जो रोड़लाइट का उजाला था, वहाँ जाकर सुई खोजने लगी।

थोड़ी देर में वही लड़का जब लौट कर आया और उसने रोड़लाइट के नीचे उसी अम्मा को पुनः कुछ खोजते हुए देखा, तो और भी आश्चर्यचकित होकर बोला हूँ ‘अरी अम्मा! यहाँ क्या खोज रही है?’

‘अरे बेटा! मेरी खोई हुई सुई नहीं मिल रही है।’

‘अम्मा तेरी कितनी सुई खोई हैं ? अभी वहाँ खोज रही थी, अब यहाँ खोज रही है ह्व लड़के ने पूछा।’

अम्मा बोली ह्व “अरे बेटा एक लड़का यहाँ से निकला, उसने कहा – अम्मा सुई को उजाले में खोज; सो अब मैं यहाँ उजाले में खोज रही हूँ।”

“अरी अम्मा! वह लड़का और कोई नहीं, मैं ही था। तू मेरी बात को समझ नहीं पायी। मेरा कहने का मतलब तो यह था कि ‘जहाँ सुई खोई है, वहाँ उजाला लाकर खोज! जब रोड़लाइट के नीचे सुई खोई ही नहीं, तो फिर वहाँ मिलेगी कैसे?’”

अम्मा ने कहा ह्व “अब समझी कि जहाँ सुई है ही नहीं, वहाँ खोजने से क्या होगा? जहाँ सुई गिरी है, वहीं उजाला लाकर खोजना होगा।”

यह कहानी सुनाकर मीना मछली ने कहा ह्व “हम उस अम्मा से कम समझदार थोड़े ही हैं, उस अम्मा की भाँति ही सारे अज्ञानी प्राणी जहाँ सुख का सागर है, वहाँ न खोजकर उस सुख को कभी काया में, कभी माया में तो कभी स्त्री-पुत्र-परिवार में खोज-खोज कर परेशान हैं। जब उनमें सुख है ही नहीं तो मिलेगा कैसे। अरे! सुख का सागर तो अपना आत्मा, कारण परमात्मा है।”

मछली से यह समाधान सुनकर सुखानन्द आनन्द विभोर हो गया।

जबतक परमात्मा हमारे ध्यान में विचरेंगे; तबतक पाँचों पाप, पाँचों इन्द्रियों के विषय एवं राग-द्वेषादि मनोविकार हमारे ध्यान में आ ही नहीं सकेंगे; क्योंकि ध्यान में परमात्मा और पाप एक साथ नहीं ठहरते। मन्दिर की सीमा में विषय-विषधर प्रवेश नहीं कर पाते।

ह्व ये तो सोचा ही नहीं, पृष्ठ-४४



## परिणामों की विचित्रता

बात पुराने जमाने की है, जब छोटे-छोटे रजवाड़े हुआ करते थे। हस्तिनापुर नगरी के राजा का नाम संवर था। राजा संवर के इकलौते बेटे का नाम था विद्युच्चर। विद्युच्चर जन्मजात प्रतिभाशाली और बुद्धिमान तो था ही, कलाप्रेमी भी था।

विद्युच्चर वाद्य-संगीत, अस्त्र-शस्त्र, नृत्य-गान आदि अनेकों कलाओं में निपुण था। उसकी माँ श्रीषेणा को उसकी कला-कुशलता पर बहुत नाज था। वह उसकी कलाओं की विशेष प्रशंसक थी।

अपनी प्रशंसा सुनकर किसे प्रसन्नता नहीं होती? किसे प्रोत्साहन नहीं मिलता? युवराज विद्युच्चर भी इसका अपवाद नहीं था। जब कोई उसकी प्रशंसा करता तो वह खूब प्रसन्न होता तथा प्रोत्साहित होकर नित्य नई-नई कलायें सीखने का प्रयत्न करता।

एक दिन उसके मन में आया “चोरी करना भी तो एक कला है।” तभी तो किसी साहसी कवि ने यह कहने का साहस जुटाया कि ह्व “दुनियाँ में सब चोर-चोर हैं, कोई छोटा चोर कोई बड़ा चोर। चोरों का चहुँ ओर शोर है।। दुनिया में सब चोर-चोर हैं।।”

बस, अन्तर इतना है कि कच्चा चोर चोर कहलाता है और पक्का चोर साहूकार। जो चोरी करते पकड़ा जाय वह कच्चा चोर है और जो इतनी सफाई से चोरी करे कि कभी पकड़ा ही न जाय, वह पक्का चोर; उस दो नम्बर के चोर को ही साहूकार कहते हैं, सेठ कहते हैं।

लूटा हुआ माल लुटाने पर उन्हें जेल नहीं; बल्कि ऊपर बैठने को मंच मिलती हैं, सम्मान में पहनने को मालायें मिलती हैं।

इनके अतिरिक्त तीसरे किस्म के चोरों का नाम है राजा-महाराजा। इनकी तो पुराणों में भी प्रशंसा की है। एक अपभ्रंस भाषा के कवि ने तो यहाँ तक स्पष्ट ही लिखा है ह्व “**जो बलवंत चोर सो राणउ**” अर्थात् बलवान चोर को ही राजा कहते हैं।

अपने बाहुबल पर और हथियारों की नोंक दिखाकर अनेक छोटे-छोटे राजाओं के राज्यों को छीनकर एवं उन्हें अपना गुलाम बना कर ही तो बलवान चोर महाराजा बनते हैं। इससे स्पष्ट है कि निःसंदेह चोरी भी एक कला है, यदि चोरी करना कला नहीं होती तो ये चोर इज्जत कैसे पाते। आज ये कलाकार ही तो जगत में सबसे अधिक इज्जत पा रहे हैं। अतः इस कला में तो मुझे महारत हासिल करनी ही होगी।”

यह सब सोचकर युवराज विद्युच्चर ने चोरी कला में कुशलता पाने का काम अपने घर से ही प्रारंभ करने का निर्णय लिया; क्योंकि उसे इसमें ही सबसे कम खतरा दिखाई दिया।

विद्युच्चर चौर्यकर्म में अभी अनाड़ी तो था ही और राजाओं के पहरेदार इतने चौकन्ने रहते थे कि बाहर से चोर तो क्या? कोई चिड़िया भी पर नहीं मार सकती थी। इसकारण ज्यों ही चोरी हुई तो सर्वप्रथम महल में ही चोर की तलाशी की गई।

वैसे तो युवराज विद्युच्चर पर चोरी करने का संदेह करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था, पर “जब थाली खोती है तो गागर में हाथ डालते हैं” इस कहावत के अनुसार शयन कक्ष की भी तलाशी ली गई उसमें विद्युच्चर रंगे हाथों पकड़ में आ गया।

दूसरे दिन पहरेदारों द्वारा डरते-डरते जब युवराज विद्युच्चर को राज दरबार में चोर के रूप में पिता के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो पिता आश्चर्यचकित हो दाँतों तले उँगली दबाकर रह गये।

ह्व ह्व ह्व  
पिताजी ने बहुत समझाया बेटा! मैं जानता हूँ कि तुम्हें कलाओं से

बहुत लगाव है, और तुमने चौर्यकला सीखने के चक्कर में यह काम किया होगा; क्योंकि अन्यथा तुम चोरी क्यों करते? मुझे किस वस्तु की कमी है। तथा क्या चोरी करना भी कोई कला है। अरे! यह तो निन्दनीय काम और दण्डनीय अपराध है, बदनामी का कारण भी है। अतः तुम ऐसी भूल पुनः कभी नहीं दुहराना।

विद्युच्चर ने साहस बटोर कर आँख बदलते हुए व्यंग में कहा ह्व “हे न्यायाधिपति! यदि न्याय-नीति के अनुसार यह बुरा काम है तब तो आपको यह राज-पाट और राज सिंहासन भी छोड़ना पड़ेगा; क्योंकि राजा-महाराजाओं को तो पुराणों में भी सबसे बड़ा चोर कहा गया है। अरे पूज्य पिताजी! मैंने तो अपने घर का धन ही चुराया है, जिस पर अन्ततोगत्वा मेरा ही हक है। राजा-महाराजा तो पराया हक हड़पते हैं। दूसरों की पसीने की कमाई पर ऐश-आराम और मौज-मस्ती करते हैं। इसप्रकार राजा-महाराजा तो चोर नहीं, बल्कि डाकुओं की श्रेणी में आते हैं और प्रजा के पालक कहलाते हैं।

ह्व ह्व ह्व ह्व  
राजा संवर बेटे के तर्कपूर्ण विचार सुनकर अवाक् रह गया। उसे उस दिन महसूस हुआ कि विद्युच्चर साधारण युवराज नहीं है, यह तो साहसी और बुद्धिमान भी है। उसे कहाँ-कहाँ से ऐसी बातें सूझती हैं। मैं उसे समझाना चाहता था; पर उसने तो मुझे ही समझा दिया। अब तो मुझे भी सोचना पड़ेगा। वैसे भी किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि ह्व “**राजसुख तोहू भरी कीच को कमल है।**” राज सत्ता हासिल करने के लिए युद्धों में कितना खून बहता है? सैकड़ों माँ-बहिनें विधवा हो जाती हैं, बालक अनाथ हो जाते हैं। योद्धाओं का अमूल्य मानव जीवन हमारे तुच्छ स्वार्थ में यों ही अनायास ही नष्ट हो जाता है। इसतरह महाराजा बड़े चोर तो हैं ही, हत्यारे भी हैं। इसीलिए तो कहा है कि ह्व यदि चक्रवर्ती सत्ता के सिंहासन पर ही प्राण छोड़ता है तो वह नियम से नरकगति को प्राप्त होता है।”

यह सोचकर राजा संवर स्वयं राजपाट, भोग विलास एवं मौज मस्ती से विरक्त हो गया। उसने सोचा बात तो बिल्कुल ठीक ही है हूँ किसी का शोषण करके अपना पोषण करना भी तो चोरी ही है। आज युवराज ने साहस करके तो मेरी आँखें खोल दी हैं, उसके लिए मैं उसका सदैव ऋणी रहूँगा।

राजा संवर ने पुत्र की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए स्वयं को सचेत करने के लिए पुत्र को मन ही मन धन्यवाद दिया और कहा हूँ बेटा! तूने ठीक ही कहा है। अब मैं भी शीघ्र ही सत्ता के सिंहासन को छोड़कर जिनदीक्षा लेकर आत्मा का कल्याण करूँगा।

हूँ हूँ हूँ हूँ

पिता की बात विद्युच्चर ने सुन तो ली; परन्तु उसे अभी अपने ही पहरेदारों द्वारा रंगे हाथों पकड़े जाने पर अपने चौर्यकर्म की कला में असफल होने का अफसोस रहा, इस कारण एक बार पुनः चौर्यकर्म में महारत पाने के प्रयोजन से सेठ अर्हददास के घर गया।

होनहार के अनुसार सब समवाय सहज मिल जाते हैं। विद्युच्चर गया था चोरी में महारत हासिल करने और वहाँ अर्हददास के पुत्र जम्बूकुमार के साथ चारों पत्नियों की वैराग्यवर्द्धक वार्ता सुनकर उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि हूँ “जब शादी के प्रथम मिलन में सारा जगत प्रेमालाप करता है, पाँचों इन्द्रियों के विषयों में मस्त रहता है, उस समय ये तत्त्वचर्चा, ये वैराग्य की बातें, ये संसार-शरीर और भोगों की निरर्थकता का चित्रण! जब ऐसे ही विचार थे तो शादी ही क्यों की इन्होंने?”

विद्युच्चर यह सब सोच ही रहा था कि यही प्रश्न एक रानी की ओर से उठा! उत्तर में जम्बूकुमार ने समाधान करते हुए किसी पर दोषारोपण न करते हुए स्पष्टीकरण किया कि हूँ “यह तो वस्तु के स्वतंत्र परिणामन की बात है। कल तक अपने चारित्रगुण की पर्याय में उपादान की

योग्यता में शादी करने का राग वर्त रहा था, तदनुसार वैसा ही व्यवसाय हो गया, होनहार भी ऐसी थी, तदनुसार निमित्त भी वैसे ही मिल गये और शादी हो गई। अब उपादान की योग्यता में मुनिभाव आ गया, अतः यही शादी वैराग्य में निमित्त बन रही है। इसमें अनहोना कुछ भी नहीं हुआ।

तुमसे भी इसी भव में ऐसा पुरुषार्थ बनना था, जिससे तुम्हें स्वर्ग मिले, जो विषय भोगों में उलझे रहने में संभव नहीं था। अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए और न ऐसा प्रश्न होना चाहिए कि ‘शादी क्यों की?’ देखो! किसी के करने से कुछ नहीं होता, जो होना होता है, उसके अनुसार ही सब बनाव स्वतः बन जाते हैं।”

यह वार्ता सुनकर विद्युच्चर के भावों में पुनः परिवर्तन हुआ और उसके चरण तो घर से उपवन की ओर मुड़ ही गये आचरण भी जम्बूकुमार और उनकी पत्नियों के साथ राग से विराग की ओर मुड़ गया।

विद्युच्चर सोचता है ‘परिणामों की स्थिति विचित्र होती है’, क्षण-क्षण में पलटती रहती है। दूसरों को क्या देखूँ? जब मैं अपने ही परिणामों को देखता हूँ तो ख्याल में आता है कि कहाँ ‘सुकुमार राजकुमार की अवस्था मौज-मस्ती का परिणाम चला करता था और किशोरावस्था में कहाँ कलायें सीखने की तमन्ना? यौवन में कहाँ चौर्य कला में निष्णात होने के विकल्प और कहाँ ये संसार से विरक्त होने के परिणाम?

पिताजी के भी मेरे ही निमित्त से राजपाट से विरक्त होकर मुनि होने के परिणाम हो गये। मेरे परिणामों में भी मुनि होने का तीव्र विकल्प चल रहा है। इसी कारण तो किसी कवि ने ठीक ही कहा है हूँ

जीवन के परिणामनि की अतिविचित्रता देखहु प्राणी।

बंध-मोक्ष परिणामन ही तैं, कहत सदा ये जिनवर बाणी ॥



## चाँटे का काम काँटे से

एक था बालक, वह चेहरे से तो एकदम मासूम दिखता था, परन्तु था बड़ा नटखट। खट-पट किए बिना उसे चैन ही नहीं पड़ती। बातूनी भी बहुत था। खट्टी-मिठी, बचकानी बातों से लोगों का मन रिझाया करता था। नटखटिया होने से उसका नाम भी 'नटखट' पड़ गया था।

यद्यपि उसकी बहिन उससे बारह वर्ष बड़ी थी, फिर भी वह बात-बात में उससे आये दिन झगड़ता ही रहता। प्रतिकूल प्रसंगों में क्रोध आने पर तो वह गालियाँ भी बकने लगता।

वह पिताजी से तो कुछ डरता भी था; पर बहिन के बड़प्पन की तो उसे बिल्कुल भी पहचान नहीं थी। बहिन ने भी उसे मुँह लगा रखा था, इस कारण बहिन से तो वह बराबरी जैसा ही व्यवहार करता था।

उसके पिता धीर, गंभीर और सहनशील बहुत थे। अतः बेटे का बहिन के साथ होते अभद्र व्यवहार देखते हुए भी वे यह सोचकर चुप रहते कि ह्व "अभी बच्चा ही तो है, बड़ा होने पर सब ठीक हो जायेगा। इस उम्र में ये बचकानी हरकते अस्वाभाविक नहीं हैं और नटखट होना कोई बुरी बात भी नहीं है, बल्कि यह तो सक्रियता का लक्षण है। थोड़ी दिशा ही तो बदलनी है, दिशा बदलते ही दशा भी बदल जायेगी।"

बहिन का प्रथम तो नारी सुलभ स्नेहिल स्वभाव होने से भाई के प्रति स्नेह होना स्वाभाविक ही था, फिर वह तो इकलौता भाई था। अतः उसके प्रति उसी का क्या, उसे पूरे परिवार का हार्दिक प्रेम प्राप्त था; परन्तु बहिन को उसकी रोज-रोज की खटपट एवं बात-बात में क्रोध करना, लड़ना-झगड़ना पसन्द नहीं था; पर वह करे तो करे भी क्या ?

बहिन काफी समझदार हो गई थी, अतः सोचती थी कि "जब पापा यह देखते हुए भी चुप रहते हैं और मम्मी बेचारी स्वयं ही उससे परेशान रहती हैं। ऐसी स्थिति में किसी से कुछ कहने में फायदा नहीं है। जिससे कहूँगी, सबका यही उत्तर होगा ह्व "अभी बच्चा ही तो है, ज्यों-ज्यों बड़ा होगा, सब ठीक हो जायेगा। तूने भी तो उसे मुँह लगा रखा है। तू ऐसा कुछ मत कर, जिससे वह बहक जाये, क्रोधित हो उठे।"

बात भी सही है। भाई के अनुराग में मैं भी तो उसे छेड़ती रहती हूँ। मुझे ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिसकी उस पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हो।"

ह्व ह्व ह्व  
बेटे का बेटे के प्रति यह अभद्र व्यवहार देखकर माँ को भी बेटे पर क्रोध तो इतना आता कि ह्व वह उसे ऐसे चाँटे लगाये कि उसे भी नानी याद आ जाए; परन्तु माँ तो आखिर माँ ही होती है। वह भी बेचारी पुत्र के प्रेम के वशीभूत होकर क्रोधरूपी जहर का घूँट पी कर रह जाती।

बेटा कितना भी भूलें करे, उदण्डता करे; परन्तु माँ का हाथ उस पर उठता ही नहीं था, क्योंकि उसकी आँखों का तारा, हृदय का प्यारा और जीवन का सहारा एकमात्र वही तो था। वह भी बेटे के बाद लम्बे काल तक प्रतीक्षा कराते-कराते हुआ था।

माँ को न केवल प्रतीक्षा ही करनी पड़ी और भी बहुत कुछ करना पड़ा था। उसके लिए माँ ने न चाहते हुए भी, धार्मिक दृष्टि से मिथ्या मानते हुए भी जिसने जो बताया, वह सब किया। न जाने डॉक्टरों के चक्कर काटे, कितने मन्त्र-तन्त्र करे-कराये और कितने पण्डितों से पूजा-पाठ कराये, कितने ज्योतिषियों के बताये अनुसार ग्रहों की शान्ति के उपाय किए; परन्तु कहीं से कुछ नहीं हुआ।

अन्त में निराश होकर जब वह बैठ गई तब कहीं वर्षों बाद भली होनहार से बच्चे का मुख देखने को मिला। भला, जो बेटा इतनी दुर्लभता से प्राप्त हुआ हो, उसे पीटने को उस माँ के हाथ कैसे उठ सकते हैं ?



पिता की लापरवाही और माँ के जरूरत से ज्यादा किए लाड़-प्यार से बेटे को बिगड़ना तो था ही सो बिगड़ गया। अब तो अड़ोस-पड़ोस से भी शिकायतें आने लगीं।

ह ह ह  
 ‘नटखट’ बालक का परिवार ऐसे गाँव में रहता था, जहाँ के रास्ते कच्चे, काँटे-कंकरीले थे। गाँव से लगभग एक किलोमीटर दूर पहाड़ी पर एक ऐसा अतिशयकारी जिनमन्दिर है, जहाँ दर्शनार्थी श्रद्धा-भक्ति से स्वतः खिचे चले आते थे। वहाँ यह परम्परा थी कि दर्शनार्थी पैदल और नंगे पैरों ही जाते।

‘नटखट’ की माँ छुट्टी के दिन या प्रत्येक अष्टमी-चौदस को नटखट को साथ लेकर ही मन्दिर जाती; क्योंकि वह सोचती कि ह “बचपन से ही उसमें धार्मिक संस्कार पड़ें।

इसी क्रम में एक दिन माँ-बेटे जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के लिए उसी पहाड़ी के मन्दिर जा रहे थे। रास्ते में पड़ा था एक काँटा, जो बेटे के पैर में लग गया। बेटा रोया और जोर-जोर से चिल्लाया ह “माँ ! मेरे पैर में काँटा लग गया है।”

माँ ने एक क्षण रुक कर सोचा ह “बेटे को काँटा तो लग ही गया, मैं क्यों न चाँटे का काम काँटों से ही कर लूँ ?”

वह मन ही मन प्रसन्न होकर बोली ह “बेटा ! तू बहिन से लड़ता-झगड़ता है न ! और उसे गालियाँ भी देता है, इसी कारण तेरे पैर में काँटा लगा है।”

“अरे बेटा ! जो बहिन के साथ लड़ाई-झगड़ा करते हैं, उसे ऐसे ही काँटे लगते हैं। यदि तू अभी भी अपना यह व्यवहार नहीं सुधारेगा तो काँटे तो क्या शूल भी चुभ सकते हैं। इसलिए तू अभी ही प्रतिज्ञा कर कि तू बहिन से तो कभी लड़ेगा ही नहीं, अड़ोसी-पड़ोसियों से भी तेरी कभी कोई शिकायत नहीं आएगी।”

बेटे ने कहा ह “यदि ऐसी बात है तो मैं अब किसी से नहीं लड़ूँगा। किसी को गाली भी नहीं दूँगा, फिर तो कभी काँटा नहीं लगेगा न ?”

अपना सोचा हुआ उपाय सफल होता देख माँ को खुशी तो हुई, परन्तु वह यह भी जानती थी कि ह “अव्युत्पन्न अर्थात् अनजान जीवों की बुरी आदतों अथवा पाप प्रवृत्तियों को छुड़ाने के लिए ही प्रथमानुयोग के पुराण आदि शास्त्रों में ऐसे कथन किए हैं; परन्तु वास्तविक बात यह है कि काँटे लगने, न लगने से बुरी आदतों के छूटने न छूटने का कोई सम्बन्ध नहीं है।” फिर भी माँ ने निःसंकोच भाव से कह दिया कि ह “यदि बहिन को गाली नहीं देगा, लड़ेगा-झगड़ेगा नहीं तो काँटा नहीं लगेगा।”

ह ह ह  
 माँ दूरदर्शी थी। उसने दूर तक का उपाय सोच रखा था कि ह “यदि कदाचित् पुनः काँटा लग भी गया तो मैं उससे भी बेटे को एक और नया पाठ पढ़ा दूँगी।”

माँ के प्रेमपूर्ण आग्रह से उसे मन्दिर जाने के संस्कार तो पड़ ही गये थे। एक दिन उस बालक को मन्दिर जाते समय ही दूसरी बार फिर पाँव में काँटा लग गया।

बेटे ने घर आकर माँ से पूछा ह “माँ ! अब तो मैंने बहिन से लड़ना-झगड़ना बिल्कुल बन्द कर दिया। अब मुझे काँटा क्यों लग गया ?”

माँ ने कहा ह “बेटा ! यदि जमीन देखकर नहीं चलोगे अथवा ऊपर को मुँह उठा कर चलोगे तो रास्ते में पड़े काँटे को तो यह पता नहीं होता कि ‘नटखट’ साहब नंगे पैर पधार रहे हैं, अतः मुझे रास्ते में से हट जाना चाहिए।”

“अरे भोले बच्चे ! काँटा तो अजीब है न ! हमें ही देखकर चलना होगा। जमीन पर देखकर चलने से हमें दो लाभ हैं ह प्रथम तो काँटों से बचेंगे और दूसरे, हमारे पैरों के नीचे आकर जीव नहीं मरेंगे, जीवों की रक्षा करना भी तो अहिंसा धर्म है। इससे पुण्यार्जन होता है, पुण्योदय से लौकिक सुखों की प्राप्ति होती है। अतः हमें देखकर ही चलना चाहिए।”

इसप्रकार माँ ने बेटे को इस बार काँटा लगाने पर **चरणानुयोग की शैली** में अहिंसा पालन करने रूप सदाचरण का मार्गदर्शन दे दिया।

संयोग से जब उस बालक को तीसरी बार फिर काँटा लग गया तो बेटे ने माँ से पूछा ह “माँ ! तूने जो भी कहा, उन सब बातों का मैंने पूरी तरह पालन किया। मैं जब छोटा था और नासमझी में बहिन से लड़ता-झगड़ता था तो तेरे कहने से ही मैंने लड़ना-झगड़ना बन्द कर दिया था। दुबारा काँटा लगाने पर तूने रास्ते में देखकर चलने को कहा तो मैंने भूमि देखकर चलना-फिरना चालू कर दिया। अब तीसरी बार काँटा क्यों लगा ?

माँ ने कहा ह “बेटा ! सावधानी से देखकर चलने पर भी जब पिछले किए पाप के फल मिलने का समय आता है तो काँटा नजर नहीं आता और वह पैर में चुभ जाता है। तूने अभी तो गाली देना, लड़ना-झगड़ना छोड़ दिया, और देखकर भी चलता है, परन्तु पहले जो क्रोधादि करके पापभाव किए, उनका फल आने का समय आ गया और तेरे पैर में काँटा लग गया। अतः अब यदि तु पाप भी नहीं करेगा तो भविष्य में भी तुझे काँटें नहीं लगेंगे।”

बेटे ने पूछा ह “माँ ! वे कौन-कौन से काम या भाव हैं, जिनसे पापबन्ध होता है ?”

माँ ने बताया ह “देखो बेटा ! दुःख करना, शोक करना, पश्चात्ताप करना, जोर-जोर से रोना आदि भाव ऐसे हैं, जिनसे हमें ऐसा पापबन्ध होता है कि जिसके फल में ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। अतः हमें इन सबसे भी बचना चाहिए और प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। फिर काँटें नहीं लगेंगे।”

अब बेटा पूर्ण आश्वस्त हो गया और उसने रोना तथा दुःखी होना भी बन्द कर दिया और सदा हँसमुख व प्रसन्न चित्त रहने लगा। परन्तु होनहार की बात है कि उसे चौथी बार फिर काँटा लग गया। तब उसने माँ से कहा ह “अब मैं दुःखी भी नहीं रहता। सदा प्रसन्न रहने का ही प्रयत्न करता हूँ, फिर ये काँटे बार-बार क्यों लगते हैं ?”

ज्ञातव्य है कि तीसरी बार काँटा लगाने पर माँ ने **करणानुयोग की**

**शैली** में पापकर्म के फल की बात कहकर भावकर्म व द्रव्यकर्म के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान करा दिया।

ह ह ह  
इस तरह पिछले पाँच-छह वर्षों में मैंने तेरे कहने से अपने में इतना सुधार किया। फिर भी बार-बार काँटे क्यों लगते हैं ?”

बेटा अब काफी समझदार हो गया था और माँ से सही बात समझना चाहता था कि काँटे लगने से इन बातों का क्या सम्बन्ध है ? और माँ बार-बार काँटे लगने के कारणों को क्यों बदल-बदल कर समझाती है ?

जब चौथी बार काँटा लगा तो माँ ने द्रव्यानुयोग की शैली का ज्ञान कराते हुए कहा ह “देखो बेटा ! प्रत्येक वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र है, काँटा भी एक वस्तु है, उसका जिस विधि से जब जैसा परिणमन होना होगा, उसका उसी विधि से वैसा ही परिणमन होगा। उसे हम-तुम तो क्या, इन्द्र व जिनेन्द्र भी नहीं बदल सकते।

इसीलिए तो कवि बुधजनजी ने निम्नांकित पद्य में निर्भयता का सन्देश देते हुए कार्य के नियामक पाँचों कारणों का ज्ञान कराया है ह

“जाकर जैसे जाहि समय में, जो हो तब जा द्वार।

सो बनि है टरि है कछु नाही, कर लीनो निरधार।।”

अर्थात् जिस द्रव्य का जिस विधि से जिस काल और जिस निमित्त से जैसा परिणमन होना है, उस द्रव्य का, उसी काल में, उसी विधि से एवं उसी निमित्त से वैसा ही परिणमन होकर रहता है। अतः दुःखी मत होओ।

जब तक राग-द्वेष रूप भाव रहेंगे, तब तक किसी न किसी बाह्य कारणों के निमित्त से लोक में सुख-दुःख के कारण बनते ही रहेंगे। अतः यदि सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो छह द्रव्य, सात तत्त्व, देव-शास्त्र-गुरु आदि प्रयोजनभूत बातों का सही-सही स्वरूप समझकर तदनुसार अपना जीवन बनाना होगा।”

इसप्रकार माँ ने चाँटे का काम काँटे से निकालकर बेटे के जीवन को उत्कृष्ट धर्ममय बना दिया।

## देखिये, इस नजर से

संजय कुमार जैन, (भोगाँव)

प्रवक्ता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा, (राज.)

जीवन के एक फलक (पहलू) को पूरी शिद्धत (स्पष्टीकरण) के साथ प्रस्तुत करने की दृष्टि से कहानी सबसे सशक्त विधा है। कहानी में भले ही एक साथ बहुरंगी सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति संभव न हो, पर जितना संभव होता है, कहानी उसमें नई भाव संपदा का सृजन करती है।

कहानी यदि सोदेश्य नहीं हो तो प्रलाप बनकर रह जाती है। और यदि उसका उद्देश्य केवल मनोरंजन ही हो तो वह मार्गदर्शक की भूमिका से च्युत होने से पाठक के मूलभूत प्रयोजन की पूर्ति नहीं करती।

कहानी की इसी सोदेश्यता को आधार बनाकर हिन्दी साहित्य में ऐसी अनेक धार्मिक एवं सामाजिक कहानियाँ लिखी गईं, जिनमें समाज में फैली अनेक बुराईयों पर तो सशक्त प्रहार किया गया; किन्तु व्यक्ति की सोच पर प्रहार करने वाली कहानियाँ बहुत कम रची गईं। जैन साहित्य में तो ऐसी कहानियों का अभाव सा ही रहा है। पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा यह 'कथा संग्रह' इस दृष्टि से बिल्कुल नया एवं अनूठा प्रयोग है।

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल इस कथा संग्रह की रचना से पूर्व लगभग आधा दर्जन सोदेश्य उपन्यासों की रचना कर चुके हैं, अतः अब वे उस इंजीनियर की भाँति हो गए हैं, जिसे यह बहुत अच्छी तरह पता है कि बिगड़ी हुई मशीन में हथौड़ा कहाँ मारना है, ताकि वह ठीक हो जाए। वे अपनी कहानियों के माध्यम से किसी सामाजिक बुराई का चित्रण नहीं करते हैं, बल्कि व्यक्ति की सोच के बुरे पक्ष पर प्रहार करते हैं, ताकि उसकी सोच ठीक हो जाए; क्योंकि मनुष्य अच्छा या बुरा नहीं होता है। यदि कुछ गलत है तो उसकी तथ्य के विपरीत मान्यता है। यदि मान्यता

ठीक हो जाए तो मनुष्य तो स्वतः ही ठीक हो जाएगा।

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल की लेखनी से निस्तृत इस कथा संग्रह में एक कहानी पौराणिक है, शेष कहानियाँ उनके जीवन के अनुभव के छोटे-छोटे प्रयोग हैं, सभी कहानियाँ आध्यात्मिकता से सराबोर हैं।

संकलन की प्रथम कहानी 'जान रहा हूँ, देख रहा हूँ' में समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार का मूल विषय है। कहानी में आषाढ मास की अष्टान्हिका में किन्हीं तत्वरसिक पण्डितजी का व्याख्यान चल रहा है, जिसमें वे आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को समझा रहे हैं। सभी श्रोता उनकी बातों को ध्यान से सुनकर अध्यात्म की मस्ती में डूब रहे हैं; किन्तु एक ब्रह्मचारीजी को उनका ज्ञाता-दृष्टापन का कथन नहीं सुहाता अतः वे दोपहर के अपने व्याख्यान में आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की मखौल उड़ाते हैं, जिसे श्रोता बने बैठे पण्डितजी सहन नहीं कर सके, अतः प्रवचन के अंत में ब्रह्मचारीजी की आज्ञा से पण्डितजी ने अपने कथ्य विषय को और अधिक स्पष्ट किया। परिणाम स्वरूप पण्डितजी की बात ब्रह्मचारीजी को समझ में तो आ ही गई, उनका हृदय भी परिवर्तित हो गया।

हृदय परिवर्तन के फार्मूले पर आधारित ये कहानी जहाँ एक ओर आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को सिद्ध करती है, वहीं दूसरी ओर धनार्जन में सतत् लगे प्राणियों को यह उद्बोधन देती है कि 'धन पुण्योदय से प्राप्त होता है, पुरुषार्थ से नहीं। कहानी के माध्यम से दूसरी बात, जो परोक्ष रूप से निकलती है वह यह कि तत्त्व की सही समझ के अभाव में ब्रह्मचर्य आदि व्रत भी अधूरे हैं।

संकलन की दूसरी कहानी 'मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं' बुद्धिसेन और विद्याधर नामक दो मित्रों की कहानी है। दोनों ही बाल सखा हैं; किन्तु पहला गाँव में रहकर केवल साक्षर होने पर भी सहज बुद्धि और सहज स्वभाव से जितनी तात्त्विक जानकारी कर लेता है, दूसरा पढ़ा-लिखा पेशे से वकील होने पर भी उन सब बातों से अपरिचित है। बुद्धिसेन

अपनी सहजता में सुखी है। विद्याधर समृद्धि के बावजूद दुखी है। बुद्धिसेन का अनपढ़ होते हुए भी गाँव में मान सम्मान है, वह गाँव का सरपंच है। विद्याधर वकील होते हुए उस सम्मान का अधिकारी न हो सका। आखिर क्यों? यह प्रश्न विद्याधर को बुद्धिसेन के करीब लाता है। आपस के संवाद से विद्याधर यह समझ जाता है कि बुद्धिसेन, बुद्धिसेन क्यों हैं? और विद्याधर विद्या को धारण करता हुआ भी तत्त्वज्ञान से वंचित क्यों है? लिहाजा विद्याधर नियमित स्वाध्याय का संकल्प कर लेता है।

कहानी का विचार पक्ष कहानी के हृदय पर हावी रहता है। कहानी में बीच-बीच में जो सूक्ति वाक्य आए हैं, वे कहानी को समृद्ध करते हैं, जैसे ह्व “जनहित की भावना से जनमत स्वतः ही अपने पक्ष में आ ही जाता है।” “ज्ञेय पदार्थों के अनुसार तत्त्वज्ञान नहीं होता बल्कि ज्ञान की पर्याय की तत्समय की योग्यता के अनुसार ज्ञेय पदार्थ ज्ञान के विषय बनते हैं।”

कहानी में निहित यह संदेश कि ‘जीवन में बदलाव किसी भी क्षण हो सकता है। यदि व्यक्ति चाहे तो बदलाव के लिए उग्र बीच में व्यवधान नहीं होती है। विद्याधर जीवनभर अनाप-शनाप धन एकत्रित करने के लिए प्रयत्न करता रहा। कभी धर्म के बारे में सोचा भी नहीं; किन्तु जैसे ही बुद्धिसेन का संपर्क हुआ, उसके जीवन में नया बदलाव आता है।’

संकलन की तीसरी कहानी ‘पूजन और प्रवचन’ मुख्यतः इस बिन्दु पर केन्द्रित है कि ‘यद्यपि पूजन और प्रवचन दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं; किन्तु दोनों में से अधिक महत्वपूर्ण क्या है? कथाकार ने मुनिश्री के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया है कि पूजन तो महत्वपूर्ण है ही; किन्तु प्रवचन का सुनना और भी अधिक महत्वपूर्ण है।’

कथा का आरंभ जिनमन्दिर में पर्यूषण पर्व के माहौल से होता है। जहाँ लोग पूजन तो खूब उत्साह से घंटों करते हैं; किन्तु उनके पास प्रवचन सुनने का समय नहीं होता। यहाँ भी ऐसा ही हो रहा था। नगर में चातुर्मास कर रहे मुनि संघ के आचार्यश्री को यह प्रवृत्ति रास नहीं आई है, लिहाजा

वे पूजन के मध्य में प्रवचन करने की घोषणा करवाते हैं। प्रवचन में आचार्यश्री एक बुढ़िया की कथा के माध्यम से यह समझाते हैं कि ‘भगवान को अपनी भक्तिभावना तथा दुःखद स्थिति सुनाना ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि भगवान की बात सुनना उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। जिनवाणी के माध्यम से भगवान भक्त से क्या कह रहे हैं? यह सुनना अति आवश्यक है। कथाकार ने कहा है कि ह्व “भगवान से अपनी कहो कम, उनकी सुनो अधिक क्योंकि हम जो कहेंगे, वह सब तो सर्वज्ञ होने से भगवान पहले से ही जानते हैं और जो वे कहेंगे, वह सब हमारे लिए नया-नया ही होगा।

दरअसल कथाकार दोनों की तुलना करते हुए जन सामान्य की एक सामान्य प्रवृत्ति की ओर इंगित कर रहे हैं। वे यह बताना चाहते हैं कि यह प्रवृत्ति इसलिए है; क्योंकि पूजन करके हमारे अहं को तुष्टि मिलती है कि ‘मैंने कुछ किया’, जबकि इसके विपरीत प्रवचन सुनने में इस प्रकार के किसी अहं की तुष्टि नहीं होती है। कहानी के अंत में मुनिश्री के रहस्योद्घाटन से कथा का समापन होता है।

संकलन की चौथी कहानी ‘पहले मुनि या मुनीम’ है। कहानी का शीर्षक ही एक रहस्य की ओर इंगित करता है; क्योंकि दोनों में कोई परस्पर अन्तः सम्बन्ध दिखाई नहीं देता है। अतः यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि ह्व ‘शीर्षक यह क्यों?’ दूसरे, मजेदार बात यह भी है कि कहानी का कोई भी पात्र मुनि या मुनीम नहीं है। कहानी का एक पात्र पण्डित पीताम्बर शास्त्री है तो दूसरी पात्रा आर्यिका माताजी हैं।

पीताम्बर शास्त्री स्थानीय विद्वान हैं, प्रथमानुयोग और चरणानुयोग में उनकी समझ गहरी है, लेकिन द्रव्यानुयोग और करणानुयोग में अधिक गति नहीं है। आर्यिका संघ की प्रमुख माताजी अध्यात्म रसिक हैं, अतः उन्होंने अपने उद्बोधन में पण्डितजी को सलाह दी कि ‘पण्डितजी! मुनि बनने से पहले मुनीम बनना अनिवार्य है’ बाद में मुनीम शब्द का

रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि मुक्तिमार्ग में मुनीम वह है जो तत्त्वों का लेखा-जोखा रखता है।

इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कहानी संकलन की सबसे छोटी कहानी होते हुए भी मार्मिकता में उतनी ही अधिक संवेदनशील है।

इस कथा संग्रह से पूर्व लेखक ने जो लगभग आधा दर्जन उपन्यास लिखे, उनमें मुख्य उद्बोधक कोई न कोई विद्वान रहा है, जबकि इन कहानियों में उद्बोधक कोई न कोई सन्त है। उद्बोधक पात्रों के इस परिवर्तन में लेखक की सोच में आया परिवर्तन लक्षित होता है। यह लेखक की सकारात्मक कल्पना है कि काश! ऐसा हो कि सभी संत अध्यात्म के रसिक हो जाएँ तो समाज में परिवर्तन लाने का जो काम विद्वानों की अधिक मेहनत के बावजूद कम परिलक्षित होता है, वह समाज में संतों के प्रति अधिक श्रद्धा-भक्ति होने के कारण संतों से अधिक सम्पन्न हो सकता है।

संकलन की पाँचवीं कथा 'मान से मुक्ति की ओर' है। यह कहानी दिखने में जरूर छोटी है, लेकिन व्यक्ति के जीवन में आने वाले विभिन्न परिवर्तनों को एक साथ एक ही पटल पर दिखाती है। सम्पदा का आगमन मनुष्य के जीवन में एक साथ दो परिवर्तन लाता है, एक तो प्रतिष्ठा में वृद्धि करता है। दूसरे, अभिमान से युक्त भी कर देता है।

कहानी के नायक सेठ जिनचन्द के साथ भी यही हुआ, धन के अभाव में उनकी गाँव में कोई इज्जत न थी। धन आने पर उनकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये। पर साथ अहंकार भी आ गया। उनकी समाज से सम्मान पाने की अपेक्षाएँ भी बढ़ गईं। लेकिन पुण्योदय भी क्षणिक ही होता है, कुछ ही दिनों में पापोदय से बालक के अपहरण के साथ ही सेठ की सारी सम्पत्ति चली जाती है, साथ ही प्रतिष्ठा और अहंकार भी।

कहानी में सेठ जिनचन्द का चरित्र स्वयं लेखकीय कल्पना है और इसे जिस प्रकार से उस चरित्र में पैठकर लेखक ने गढ़ा है, वह सामान्यतः

किसी भी श्रेष्ठी के जीवन और उसकी सोच का नमूना हो सकता है। इस चरित्र को पढ़कर पाठक अपनी सोच में बदलाव ला सकता है।

सेठ जिनचन्द ने अपनी मान-बड़ाई के लिए जिन घटनाओं का जिक्र किया उन घटनाओं से श्रेष्ठिवर्ग के मन में पलने वाली सोच बहुत स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होती है। हमारा श्रेष्ठिवर्ग अपने मान की पुष्टि हेतु पद और आसन में चाहे कितनी ही धनराशि क्यों न खर्च कर दे; किन्तु धार्मिक कार्यों में धन राशि खर्च करने में जितनी आना-कानी करता है, वह किसी से छिपी नहीं है। दूसरे, उनके द्वारा बनाए गए सहायतार्थ ट्रस्ट भी उनके निजी कार्यों के पोषण के लिए ही अधिक होते हैं, दूसरों की सहायता के लिए कम।

इस कहानी में लेखक ने श्रेष्ठि वर्ग पर अपनी निगाह तीखी तो रखी ही है, साथ ही इस वर्ग को प्रश्रय देने वालों को भी नहीं बखशा है।

छठी कहानी 'स्वर्ग वासहू नीकौ नाँही' में सेठ मनमोहन के प्रारंभिक जीवन में पुण्योदय से धन, यश, भोग, पुत्र, पत्नी आदि सभी का संयोग है और फिर धीरे-धीरे पाप का उदय आ जाने से सभी अनुकूलतायें प्रतिकूलता में परिवर्तित हो जाने की घटना आदि त्वरित घटित हो जाते हैं।

कहानी का कथ्य इसके शीर्षक में ही निहित है कि यदि पुण्य के उदय से स्वर्ग के समान भोग सामग्री प्राप्त हो तो वह भी अच्छी नहीं है; क्योंकि एक तो सभी संयोग क्षणिक हैं। दूसरे, संयोग और वियोग पुण्य-पाप के फल हैं, पुण्य का उदय होगा तो सहज ही अनुकूल संयोगों की प्राप्ति होगी और पापोदय के साथ ही वियोग घटित हो जाएगा। तीसरे, पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का रुचिपूर्वक भोग अंततः पाप का ही बंध करता है। इसीलिए लेखक ने आगम के साक्ष्य से अभिधा और लक्षणा दोनों ही दृष्टियों से 'स्वर्गवास हू नीकौ नाँही' शीर्षक को सत्य सिद्ध किया है।

'ऐसे क्या पाप किए' कहानी का प्रमुख पात्र ऐसा है, सामान्य अर्थों में जिसे धार्मिक कहा जा सकता है; क्योंकि धर्म के नाम पर बहुत कुछ

करता रहता है। लेकिन ऐसा धार्मिक होते हुए भी उसके जीवन की कठिनाइयाँ कम होतीं नजर नहीं आती हैं। इस कारण उसकी जुबान से निकलता है कि **‘ऐसे क्या पाप किए।’**

लक्ष्मीनन्दन, जो कहानी का नायक है, वह स्वयं रोगी है, युवा पुत्र का वियोग हो गया, गृह-कलह प्रिय पत्नि हैं और ऊपर से चार बेटियों का बोझ है वह ये सब संकट उसके जीवन की परछाईं हैं। ऐसे में वह कथाकार से पूछता है कि **‘मैंने ऐसे क्या पाप किए, जिनका इस रूप में मुझे फल प्राप्त हुआ। कथा के अंत में लेखक के द्वारा पात्र को यह समझा दिया जाता है कि उसने ‘ऐसे क्या पाप किए’।**

दरअसल, यहाँ लेखक लक्ष्मीनन्दन के माध्यम से आम आदमी को पाप का सही स्वरूप समझाना चाहता है।

**‘यदि स्वर्ग-नरक नहीं हुए तो’** कहानी द्वारा लेखक पाठकों को सन्मार्ग दिखाना चाहता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि पुण्य के फल में स्वर्ग और पाप के फल में नरक आदि कुगतियों की प्राप्ति होती है। इस धारणा के कारण आम आदमी जीवन की तमाम व्यस्तताओं के रहते पुण्योपार्जन के लिए समय निकाल ही लेता है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो इस तथ्य पर कतई विश्वास नहीं करते हैं, और भोग-भोगने में इतने मस्त रहते हैं कि शुभ कार्य का उनके जीवन में लेश भी नहीं होता।

आनंदपुर गाँव के दो परिवारों की यह छोटी कथा **‘स्वर्ग-नरक नहीं हुए तो’** के विश्वास और अविश्वास पर झूलती कथा है। यहाँ विश्वास करने वाले के दोनों हाथों में लड्डू हैं; क्योंकि विश्वास करने वाले के संयमित जीवन के कारण इह लोक और पुण्यार्जन के कारण पर लोक, दोनों सुधरने वाले हैं, जबकि अविश्वासी के दोनों हाथ खाली हैं, असंयमित जीवन के कारण इहलोक और पापार्जन के कारण परलोक दोनों ही बिगड़ने वाले हैं। लिहाजा स्वर्ग व नरक के अस्तित्व पर विश्वास करते हुए अपने जीवन

को धर्ममय करना चाहिए, यही इस कहानी का कथ्य है।

**‘मोय सुन सुन आवे हाँसी’** कहानी में कहा गया है कि वह

यदि जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य पाना चाहते हैं तो उस लक्ष्य को पाने के लिए दर-दर भटकना भी पड़े तो भी महंगा नहीं है; क्योंकि उस भटकन से वह लक्ष्य के करीब पहुँच जाता है। कहानी के नायक सुखानंद ने योगीजी से मीना मछली तक की यात्रा के लिए अनेक पड़ाव पार किए और अंत में वह अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है।

किस्सागोई शैली में लिखी यह कहानी आरंभ से लेकर अंत तक घटना दर घटना पाठक की उत्सुकता को बनाए रखती है। मीना मछली और सुखानन्द के संवाद भी नाटकीयता से भरे हुए हैं। साथ ही अपने कथ्य के संप्रेषण की दृष्टि से भी सफल कहानी है।

जम्बू स्वामी के जीवन चरित्र की अंतकथा के रूप में चर्चित घटना के पात्र विद्युच्चर चोर के जीवन को प्रस्तुत करने वाली **‘परिणामों की विचित्रता’** कहानी में हस्तिनापुर के राजा संवर का पुत्र विद्युच्चर चौथी कला में प्रवीण होना चाहता है, अतः उस प्रयोजन से नगरश्रेष्ठि अर्हद्दास के घर में चोरी करने जाता है। वहाँ उनके पुत्र जम्बूकुमार विवाह के प्रथम मिलन के अवसर पर अपनी चारों पत्नियों से वैराग्य प्रेरक तत्त्वचर्चा कर रहे थे। विद्युच्चर ने जब उस चर्चा को सुना तो विस्मय से भर उठा। कहाँ तो प्रथम मिलन का प्रसंग और कहाँ ऐसी तत्त्व चर्चा! विद्युच्चर का चोरी का राग-विराग में परिणमित हो गया। फलतः दीक्षा धारण करने के लिए चल पड़ा।

यद्यपि कथा पौराणिक और प्राचीन हैं, किन्तु कथा के माध्यम से परिणामों की विचित्रता को जिस तरह से रेखांकित किया है, वह उत्तरोत्तर कौतूहलबर्धक है।

विद्युच्चर के चरित्र के परिवर्तन से सिद्ध होता है कि वह परिणामों में बदलाव किसी भी क्षण हो सकता है, और यही क्षणिक पर्याय की असीम

सामर्थ्य है। कहानी में आयी 'जब थाली खोती है तो गागर में हाथ डालते हैं' जैसी कहावतें और अनेक सूक्तियाँ कहानी प्रवाह को समृद्ध करती हैं।

बाल मनोविज्ञान पर आधारित 'चाँटे का काम काँटे से' संकलन की अन्तिम कहानी है। यह कथा एक ऐसे बालक की है, जिसका नाम ही नहीं काम भी नटखट हैं, घर के सभी सदस्य उसे बिना पीटे, सुधारना चाहते हैं, एतदर्थ चिंतित रहते हैं, आखिर में माँ को एक रास्ता मिल ही गया। माँ ने सीढ़ी दर सीढ़ी उसे समझाकर सुधारने का उपाय निकाल लिया। बालक को चार बार रास्ते में काँटा लगता है, चारों दफा माँ अलग-अलग कारण बताकर उस बालक को सुधारने का प्रयास करती है।

यह कथा एक साथ दो कथ्यों को प्रस्तुत करती है। पहले कथ्य में लेखक ने भव्य जीवों को सन्मार्ग बताने को जिनवाणी के चारों अनुयोगों की उपदेश की शैली के बारे में वर्णन किया है।

दूसरे कथ्य का महत्त्व बाल मनोविज्ञान से जुड़ा है। यह समस्या सामान्यतः प्रत्येक परिवार की है, जहाँ छोटे बच्चे हैं। बच्चे गलतियाँ करते हैं, और परिवार के बुजुर्ग सदस्य उन बच्चों को सुधारने का कार्य करना चाहते हैं। लेकिन यह सुधार कार्य कैसे किया जाए, यह उससे भी बड़ी समस्या होती है। आखिर बच्चों को मारपीट कर सुधार कार्य जारी किया जाता है। यहाँ कथा लेखक एक समाधान देने का प्रयास करते हैं कि बनिस्पत मार-पीट के यदि सही मौके पर बच्चों को समझाया जाए और उन्हें सही रास्ता दिखाया जाए तो हम उन बच्चों को न केवल सुधार सकते हैं, बल्कि संस्कारित भी कर सकते हैं।

कहानी आदि से अंत तक पाठक को स्वयं से जोड़े रखती है, जो कि लेखक की विशेषता है। यद्यपि कथा का कथ्य एकदम नवीन नहीं है, किन्तु कथा के प्रस्तुतीकरण की शैली उसे बिल्कुल नया बना देती है।

कुल मिलाकर संकलन की सभी कहानियाँ पाठक को कथा संसार के

नये क्षितिज से परिचित कराती हैं। इस संकलन की कथाओं का कथ्य हमारे जीवन की उन भूलों की ओर इंगित करता है, जो सहज ही हमारे जीवन में हो रही हैं; किन्तु हम उनसे अनजान हैं।

रहा सवाल लेखक की कथा शैली को आधार बनाकर परखने का तो कहानी को परिभाषित करने के प्रयास में करीब एक सदी गुजर गई, लेकिन हर बार नई कहानी के द्वारा वह 'कहानी के तत्त्व' रूपी बना बनाया फ्रेम टूटता नजर आता रहा है।

पण्डित रतनचन्द्र भारिल्ल द्वारा रचित प्रस्तुत कथा संग्रह कहानी के बने बनाए फ्रेम में समाता नजर नहीं आता, बल्कि उस फ्रेम की मर्यादा तोड़कर कहानी के तत्त्वों की सीमा को लांघकर कथ्य को नए ढंग से प्रस्तुत करता है।

कथा-तत्त्व के साँचे के अस्तित्व को आलोचक तो बहुत पहले ही नकार चुके हैं, अतः उस साँचे को आधार बनाकर इन कहानियों को देखना-परखना बेमानी है, निरर्थक है।

कहने को इन कहानियों में कथानक है, पर कथ्य के लिए। संवाद हैं, पर कथ्य के लिए। वातावरण भी है, पर कथ्य के लिए है। वैसे तो प्रायः प्रस्तुत कहानियों में कहानी के सभी तत्त्व हैं; पर कथाकार का साध्य कथ्य है। अतः वह कहानी के तत्त्वों के निर्वाह में अधिक नहीं उलझा।

कथा में कथ्य कई स्तरों पर प्रवाहमान है। एक तो मूल कथ्य जिसका निर्वाह कथाकार आद्यन्त करता ही है। दूसरे संदर्भित या संयोगी कथ्य, जो स्थान-स्थान पर कथा के साथ बोलते नजर आते हैं।

निःसंदेह जैन साहित्य को नूतन कहानी शैली में प्रस्तुत यह तत्त्वज्ञान लेखक को तो अमरत्व प्रदान करेगा ही, युवा पाठकों को भी आकर्षित करेगा।